अलवर

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

अलवर: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

- आत्मकथ्य
- प्रकाशक
- अलवर: एक नज़र में

1. अलवर का इतिहास
    - प्राचीन काल
        - विराट नगर का निर्माण
    - मध्य काल
        - राजा प्रताप सिंह
        - महाराव राजा बखतावर सिंह
        - महाराव राजा श्री विनय सिंह
        - सवाई शिवदान सिंह
        - सवाई मंगल सिंह
    - आधुनिक काल
        - महाराजा जय सिंह
        - सवाई तेज सिंह
2. अलवर के प्राचीन ऐतिहासिक नगर एवं गांव
    - मत्स्यपुरी
    - राजगढ़
    - तिजारा
    - अलवर शहर
3. प्राचीन अलवर के प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तित्व
    - वीर सेनानी हसनखाँ मेवाती
    - ध्रुवपद सम्राट अलाबन्दे खाँ
4. अलवर की ऐतिहासिक धरोहरें
    - बाला किला
    - सीलीसेढ़
    - तालवृक्ष
    - भर्तृहरि की समाधि

  - सरिस्का
  - पाण्डुपोल
  - नारायणीजी
  - भानगढ़
  - नलदेश्वर
  - जयसमन्द बांध
5. अलवर के ऐतिहासिक संत एवं कवि
  - लालदास
  - चरणदास
  - सहजोबाई और दयाबाई
  - करमाबाई
  - अलीबख्श
  - रणजीत सिंह बेनामी

अलवर:

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

लोकेश माथुर

For information, please contact the author at his email address lokesh_0105@yahoo.co.in.

आत्मकथ्य

मेरा जन्म अलवर में हुआ। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान लेखन प्रारम्भ किया और शिक्षा के साथ साथ समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित होने लगे । शिक्षा के साथ ही पत्रकारिता प्रारम्भ की और अलवर के स्थानीय, राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर के पत्र-पत्रिकाओं का प्रतिनिधित्व किया । 18 वर्ष की अल्पायु में **यंगस्टर्स टाइम्स** नामक पाक्षिक समाचार पत्र के प्रकाशन का दुस्साहस किया जो आर्थिक कारणों से तीन अंकों के बाद ही बन्द हो गया । अध्ययन के दौरान राजऋषि महाविद्यालय की पत्रिका का संपादन भी किया ।

बाद में युनाइटेड इण्डिया इंश्योरेंस कम्पनी अलवर में सेवा में शामिल और अलवर से प्रकाशित एक हिन्दी मासिक पत्रिका में परोक्ष रूप से जुड़े रहे । वर्ष 2004 से अलवर से संबधित इतिहास एवं ऐतिहासिक दस्तावेजों का संकलन प्रारम्भ किया ।

2012 में सोशल मीडिया के प्रभावी होने पर फेस बुक पर द ब्यूटीफुल अलवर (The Beautiful Alwar) के नाम से अलवर पर सबसे पहला पेज बनाकर अलवर से संबधित ऐतिहासिक जानकारी, फोटोग्राफ एवं दस्तावेजों का प्रकाशन प्रारम्भ किया जो आजतक सतत् रूप से जारी है । इस पेज को 3700 से अधिक लोग पसन्द कर रहे हैं ।

वर्तमान में जयपुर में रह कर अलवर को प्रमोट करने के लिए प्रयासरत ।

— *लोकेश माथुर*

प्रकाशक की ओर से

प्रकाशक InOurDays.org यह पुस्तक श्रीमती दयावंती को समर्पित करता है। श्री खेमचंदजी की पत्नी और हम आठ भाई-बहनों की माँ , श्रीमती दयावंती एक साधारण लेकिन मेहनती गृहिणी थी। उन्होंने अपने आठों बच्चों को प्यार और लगन के साथ पाल पोस कर बड़ा किया।

1930 के दशक में उन्होंने मैट्रिक पास कर लिया । उन दिनों के भारत के संदर्भ में वह अच्छी तरह से शिक्षित मानी जा सकती हैं।

बचपन में मेरी शिक्षा जब हिंदी माध्यम से अंग्रेजी माध्यम में बदली तो उन्होंने मुझे अंग्रेजी के अक्षर खुद सिखाये।

राधास्वामी परंपरा में पली बड़ी , वह शाकाहारी थी। शादी के जल्द बाद ही वह मांसाहारी व्यंजन बनाने में माहिर हो गयीं। उनके खाने की तारीफ दूर दूर तक फैल गयी।

मेरे लिए वह सदैव स्नेह, सेवा और मम्ता का प्रतीक बनी रहेंगीं ।

मैं उन्हें यह पुस्तक कृतज्ञता पूर्वक समर्पित करता हूँ ।

प्रकाशक InOurDays.org की यह पहली पुस्तक है जो हिंदी में छापी जा रही है। हम अपने पहले हिंदी लेखक , श्री लोकेश माथुर जी , के बहुत आभारी हैं।

हमें आशा है कि अलवर के इतिहास पर यह किताब हमारे पाठकों को पसन्द आएगी। प्रसंगवश इस किताब के लेकख की तरह मेरा जन्म भी अलवर में हुआ था। मेरी पूजनीय पिताजी , श्री खेम चाँद जी , अलवर के सबसे पहले कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट रह चुके थे।

हमें उम्मीद है कि यह अग्रणी प्रयास अन्य उभरते लेखकों को ई-बुक्स लिखने के लिए प्रेरित करेगा। यदि आपके पास पांडुलिपि है, तो हम आपके ईबुक को प्रकाशित करने की पेशकश करते हैं। हमें संपर्क करें email address editor.inourdays@gmail.com या subhmat@yahoo.com पर ।

— *सुभाष माथुर*

संपादक : InOurDays.org

InOurDays eBooks के प्रकाशक

और लघु कथा लेखक

अलवरः एक नज़र में

अलवर राज्य अपनी स्थापना से आज तक उतार चढ़ाव से परिपूर्ण रहा है । अलवर देश की पहली रियासत जिसने अ्रग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी से अक्टूबर 1864 में संधि कर ली थी । इस संधि के बाद तो अलवर रियासत जैसे अंग्रेजों के ही हाथ में चली गई थी । राज गद्दी पर राज्य अभिषेक और अलवर महाराजा के निवार्सन जैसे निर्णय अंग्रेजी हुकूमत ने लिये ।

आजादी के बाद अलवर को युनाइटेड स्टेट आफ मत्स्य ; मत्सय यूनियन द्ध में शामिल कर मत्स्य संध की राजधानी भी बनाया गया वहीं एकीकृत राजस्थान के समय अविभाजित पंजाब के कुछ टुकड़े लेकर एक बड़ा जिला भी बनाया गया । देश के विभाजन के समय अलवर में जो साम्प्रदायिक दंगे फसाद हुए उनका जिक्र करें तो रूह कांप जाती है । विभाजन के समय अनेक मुस्लिमों को मार काट दिया गया और अनेक पंजाबी - सिंधी परिवारों ने अलवर और आस पास के गांवों में आकर शरण ली और अलवर को स्थाई रूप से अपना रहने का ठिकाना बना लिया ।

आजादी और देश के विभाजन के बाद हालात शांत तो हुए परन्तु अलवर में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई । सरकार में कद्दावार नेता तो अलवर जिले ने दिये परन्तु कोई विशेष कार्य जिसका उल्लेख किया जाए, उन्होंने ने नहीं किया । सत्तर के मध्य 1975 में अपातकाल के दौरन जरूर अलवर का तीव्र विकास हुआ जिसका पूर्ण श्रेय दिल्ली की भारत सरकार को जाता है । अलवर को 1976 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में शामिल किया गया और चमचमाती सड़को निर्माण कर ट्रेफिक लाइटों को लगाया गया । राजस्थान की राजधानी जयपुर में तब तक इन लाइटों की स्थापना नहीं हुई थी । साथ ही अलवर में औद्योगिक क्रांति का भी बिगुल बजाया गया जिसके साथ अलवर से सटे देसूला गांव के पास मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र की स्थापना की गई और इसके साथ हीं एक से बड़े एक औद्योगिक घरानों ने अपने अपने उद्योग यहाँ लगाकर उत्पादन शुरू किया । अलवर का मत्स्य औद्योगिक क्षेत्र पूरे देश में मील का पत्थर साबित हुआ । साथ ही माल परिवहन के लिए लोगों ने ट्रक और लॉरी खरीद कर अलवर में देश में सबसे बड़ी ट्क यूनियन का गौरव हासिल किया ।

परन्तु विकास की यह बयार दूर तक नहीं चल सकी । 80 का दशक पूरा होते होते सरकारी , राजनीतिं और प्रशासनिक अमले की नीतियों एवं अनदेखी की कारण जिस तीव्र गति से

औद्योगिक विकास शुरू हुआ था उतनी ही तीव्र गति से कलकारखाने रूग्ण हो गए और समय के साथ साथ बन्द होते चले गए । उत्पादन बन्द होता चला गया और बेराजगारी और बेकारी दिन प्रतिदिन बढ़ती चली गई । अनेक वर्षो तक अलवर की अनदेखी होती रही और जिले के अन्य क्षेत्र भिवाड़ी में औद्योगिक विकास होता रहा । भिवाड़ी के बाद दिल्ली जयपुर हाइवे पर शाहजहाँ और बहरोड़ में अब इनका विकास प्रारम्भ किया गया । हालांकि की अभिलेख में विकास अलवर जिले का हुआ परन्तु अलवर शहर के उद्योग एक इतिहास बनकर रह गये । दिग्गज औद्योगिक घराने , मार्डन ग्रुप, मोदी ग्रुप, आयशर ग्रुप, केल्विनेटर ऑफ इण्डिया, क्राउन सिरेमिक्स जैसे घराने जिनका उत्पाद सिर चढ़कर बोलता था , बन्द हो गए । साथ ही बन्द हो गई देश की सबसे बड़ी ट्रकों की मंडी । परन्तु सरसों के उत्पादन ने अलवर का नाम रोषन कर कीर्तिमान स्थापित कर दिया और अलवर देष के सर्वाधिक सरसों पैदा करने वाला जिला बना और अनेक तेल मिल और तेल उद्योग यहां स्थापित हुए ।

नब्बे का दषक आते आते शेयर बाजार की तरफ लोगों का रूझान बढ़ने लगा । अलवर भी इससे अछूता नहीं रहा । अलवर में शेयर बाजार गर्माने लगा । 1992 में पहली बार अलवर शहर में एक कम्पनी के शेयर के आवेदन पत्र जमा हुए । अलवर के लोगों ने जमकर पैसा निवेष किया और देष की नज़र में बड़ा बाजार बनकर उभरा । नतीजा ये रहा कि आयकर विभाग ने सभी निवेषकर्त्ताओं को नोटिस जारी किये और यह मामला अपने आप में एक इतिहास बन कर उभरा । जैसा हश्र शेयर के किंग हर्षद मेहता का हुआ वैसा ही हश्र अलवर के निवेषकर्त्ताओं का हुआ । अनेक वर्षो तक अलवर के लोगों ने आयकर विभाग के चक्कर लगाए और इसके बीतते बीतते दूसरे व्यापार की ओर रूख कर लिया ।

इस बीच अगर कुछ सुकून देने वाली तरक्की हुई तो वह थी लगातार शिक्षा का विस्तार और साथ में छोटे और मंझोले समचार पत्रों का प्रकाशन । जिले में राज्य सरकार ने और कुछ शिक्षा विद् ने प्राथमिक, उच्च प्राथमिक , माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की जिससे शिक्षार्थियों को अपने घर के ही पास उच्च शिक्षा मिलने लगी । अलवर शहर में बालिका उच्च षिक्षा हेतु महाविद्यालय स्थापित किया गया । तहसील स्तर पर भी कुछ महाविद्यालयों की स्थापना के कारण विद्यार्थियों अपने ही गृह तहसील में उच्च शिक्षा मिलने लगीजिसके कारण अलवर जिले ने शिक्षा के क्षे़त्र में अपना परचम लहरा दिया और यहाँ के छा़त्र राज्य और देश के स्तर पर सफलता हासिल करते चले गये और उच्च पदों पर नौकारी हासिल कर जिले का गौरव बढ़ाया । इसी प्रकार अलवर ने अनेक लेखक , पत्रकार आदि भी दिये जिन्होनें राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर अलवर का मान बढ़ाया ।

वर्तमान में अलवर देष और दुनिया की नज़र में एक बड़े शहर के रूप में प्रख्यात है । अनेक उच्च षिक्षण संस्थान यहां स्थापित हो चुके हैं । राजस्थान सरकार ने केन्द्र द्वारा बनाई की ईएसआई अस्पताल के भवन में मेडिकल कॉलेज खोलने की घोषणा कर दी है । केन्द्र और राज्य मिलकर दिल्ली से अलवर के बीच कभी मेट्रो रेल तो कभी तीव्र गति की रेल लाने की योजना के साथ अन्य बड़ी परियोजनाओं पर कार्य कर रही हैं ।

अलवर को सीमित शब्दों में समेटने का मेरा छोटा सा यह प्रयास आपसे सम्मुख राजऋषि कॉलेज द्वारा प्रकाषित विनय पत्रिका के पुर्नः मुद्रण के संक्षेप रूप में प्रस्तुत है हालांकि इसके मूल रूप कोई परिवर्तन नहीं किया गया है तथापि कुछ परिषिष्ट जो कालातीत हो गए हैं, उन्हें अवष्यक हटा दिया गया है ।

1. अलवर का इतिहास

अलवर के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को तीन भागों में विभक्त कर विवेचन करना अधिक मुनासिब रहेगा ।

प्राचीन काल

पुराणों के अनुसार प्राचीन काल में इस देश पर महर्षि कश्यप की स्त्री दिति से उत्पन्न हुए, वीर पराक्रमी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के राज्य का पता चलता है।

हिरण्यकशिपु के पौत्र दैत्यराज दानी ने महादान से पूर्व ही यह देश अपने मधु नाम सेनापति को दे दिया था। हरिवंश पुराण के अनुसार मधु के पुत्र धुन्धु ने उज्जानक (ढुंढार) देश में अपनी राजधानी स्थापित की, पर यह राजा बड़ा ही अत्याचारी और प्रजापीड़क था। इसकी अनीतियों से दु:खित होकर महर्षिक उत्तंक ने अयोध्या के सूर्यवंशी महाराज वृहदश्व को इधर शान्ति स्थापन के लिये उत्तेजित किया। उन्होनें अपने पुत्र कुवलयाश्व को भारी सेना के साथ इधर भेजा जिन्होंने धुन्धु को मारकर यह देश अपने राज्य में मिला लिया और इस प्रकार यह देश दैत्यवंश की आधीनता से निकलकर सूर्यवंश की छत्रछाया में आया। महाराज कुवलयाश्व की 12 वीं पीढ़ी में बड़े पुत्र पुरूकुल्स तो अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठे और छोटे पुत्र अम्बरीष इस देश के अधिपति हुए। इनकी 17वीं पीढ़ी तक राजकार्य शान्तिपूर्वक चलता रहा, किन्तु 18 वीं पीढ़ी में राजा महीधर से मगध देश के चन्द्रवंशी राजा उपरिचर ने यह देश छीन लिया।

मत्स्य और विराट-राजा उपरिचर के पांच पुत्र थे जिनमें चौथे पुत्र मत्सिल (मत्स) को यह देश सौंपा गया। भागवत में मत्सिल और कुशाश्व दोनों को देश का राजा लिखा है पर महाभारात आदि पर्व 64 अध्याय, 45 श्लोक में कुशाश्व को चेदी देश का और मत्सिल को उज्जानक खंड (ढुंढार) का राजा माना है। राजा मत्सिल का नाम इस प्रदेश के लिए गौरवशाली रहा है। उसने उज्जानक का नाम अपने नाम पर 'मत्स्य' देश रखा और मत्स्यपुरी (माचैड़ी) नाम का नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। पहाड़ियों से घिरा होने के कारण यह स्थान प्राचीन समयसे ही सामरिक दृष्टि से महत्त्व का रहा है। उन दिनों इधर बाघेल, पाण्डव, वच्छल आदि जातियाँ बसती थी।

विराट नगर का निर्माण

राजा मत्स्य के सत्यसेन और वनसेन नामक दो पुत्र थे। जिनमें सत्यसेन तो अपने नाना के राज्य कलिंग देश का राजा हो गया और वनसेन (बेनु) ने मत्स्य देश का राज्य सम्भाला। वनसेन का बड़ा बेटा विराट यहाँ का राजा हुआ। राजा विराट महाभारत कालीन महत्त्वूपर्ण

व्यक्ति हुआ है। उसने मत्स्यपुरी से 35 मील पश्चिम के पहाड़ी अंचल में अपने नाम पर विराट नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। माचैड़ी और बैराठ के गहन बीहड़ जंगलों में अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने निवास किया था, जिसके कारण उनसे संबंधित अनेक गाथाएँ इस अंचल के प्राकृतिक स्थलों से जुड़ी हुई हैं। कौरव सेना ने राजा विराट की गाएंँ इसी देश में घेरी थी, जिस पर राजा विराट के पुत्र उत्तमकुमार ने अर्जुन की सहायता से कौरव सेना को हराया था।

महाभारत काल में तिजारा के पास श्रोद्विष्ट नगरी (सरहटा) में राजा सुशर्माजीत के राज्य का भी उल्लेख मिलता है। त्रिगर्त नाम प्रसिद्ध नगर (वर्तमान में तिजारा) भी महाभारत काल में प्रसिद्ध था, जो सरहटा के पास ही है। त्रिगर्त एक नगर का नाम तो था ही साथ ही एक गणराज्य भी था, जिसमें छः घाटक मिलकर त्रिगर्तों के नाम से प्रसिद्ध था तथा इनका शासित प्रदेश त्रिगर्त नाम से विख्यात था जिसकी राजधानी त्रिगर्त (तिजारा) थी।

इस प्रकार प्राचीन काल में उत्तर में त्रिगर्त (तिजारा) और दक्षिण में मत्स्यपुरी तथा पश्चिम में विराट नगर आदि प्रमुख केन्द्र थे जहाँ से इस प्रान्त की बागड़ोर सम्भाली जाती थी।

मध्य काल

यहाँ का मध्यकालीन इतिहास भी कम महत्त्व का नहीं है। उत्तर में राजा सुशर्मा के वंशजों का इधर बहुत समय तक राज्य रहा। पुरातत्व सर्वे भाग 20 में उल्लिखित है कि यादववंशी राजा तेजपाल ने सुशर्मा के वंशजों के पास शरण ली और यहाँ के प्रान्त पर यादवों का बहुत समय तक राज्य रहा। दक्षिण में मीणा जाति प्रबल थी। द्योसा, अम्बर, क्यारा आदि स्थान उनके सुशासन में थे। 9 वीं शताब्दी तक वे इतने प्रबल हो गये थे कि आधुनिक राजगढ़ और थानागाजी के इलाकों में उनका बोलबाला था तथा वे लूट मार किया करते थे।

पाँचवीं शताब्दी में पश्चिमोत्तर भाग पर मोरध्वज का राज्य बताया जाता है। इसकी राजधीन साहबी नदी के तट पर मोरध्वज नगरी थी, जिसके प्राचीन चिन्ह नदी के कटाव में पाये जाते थे । संभवतः बाद में चौहान राजाओं का यहाँ का प्रभाव मोरध्वज राजा से ही जुड़ने से रहा हो।

नवीं शताब्दी के आरम्भ में गुर्जर-प्रतिहार वंश उत्तर भारत में प्रभावशाली हो गया। इसलिए सारे उत्तरी भारत में शान्ति एवं सुशासन के दिन फिर आ गये। कन्नौज को उन्होंने राजधानी बनाया और द्योसा, मत्स्य आदि प्रान्तों तक अपना अधिकार किया। इस प्रकार 10 वीं शताब्दी से राजगढ़ और थानागाजी तहसीलों के प्रमुख गढ़ों जैसे मत्स्यपुरी (माचैड़ी) व्याघ्रराज (राजगढ़) राज्यपुर (राजोरगढ़) आदि पर अपना अधिकार जमा लिया। सुशासन के कारण मीणाओं का आतंक कुचल दिया गया और कला और संस्कृति का पोषण होने लगा। राजोरगढ़ उस संस्कृति का प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र रहा। अलवर एवं दिल्ली के संग्रहालयों के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि 10 वीं, 11 वीं शताब्दी में राजोरगढ़ महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध नगर था जहाँ के कलात्मक मंदिरों को देखकर पुरानी शान का पता चलता है। गुर्जर-प्रतिहारवंशीय महाराजाधिराज सावट के पुत्र मथनदेव यहाँ राज्य करते थे, तो कन्नौज के परमभट्टारक महाराजा परमेश्वर क्षितिपाल देव (महिपाल) के दूसरे बेटे गुर्जर-प्रतिहार वंश का कन्नौजी-वैभव समाप्त होने पर गुर्जरों ने माचैड़ी,राजगढ, राजोरगढ़, आदि स्थानों पर अपने छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य बना लिए जिनका प्रभुत्व अकबर के समय तक बना रहा।

अलवर जिले के दक्षिणी भाग में बड़गुजरों का प्रताप बहुत समय तक रहा। पश्चिमी भाग पर तथा अलवर पर 13 वीं शताब्दी से पूर्व निकुम्भों का भी अधिकार रहा। 13 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अजमेर के राजा बीसलदेव चौहान ने अलवर के निकुम्भों को अपने अधीन

कर लिया और सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने अलवर निकुम्भों से छीन कर अपने वंशवालों को दे दिया। 15 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिल्ली पर सुल्तान फिरोजशाह राज्य करता था । उस समय भी अलवर जिले के दक्षिणीं भग पर गुर्जर-प्रतिहारों की शक्ति बढ़ी-चढ़ी थी। पृथ्वीराज चौहान के बाद से ही अलवर के उत्तर पश्चिमी भाग पर चौहानों की शक्ति प्रबल रही। मदन सिंह चौहान ने मदनपुर (मण्डावर) ग्राम बसाया तथा उनके वंशज इधर-उधर गये । जम शेखावतों ने भी किस प्रकार चौहानों के पैर इधर नहीं जमने दिये यह भी पूर्व कहा जा चुका है।

वास्तव में तो 15 वीं शताब्दी के आसपास से अलवर जिला मुसलमानों की राजनीति से प्रभावित होने लगा। दिल्ली के निकट होने के कारण मुसलमान शासकों ने यहाँ की जनता को बलात् मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया। फिरोजशाह तुगलक ने अनेक जाति के लोगों को मुसलमान बनाया जिनमें मुण्डावर के राजपूत भी सम्मिलित थे। मेव जाति जो कि पहले हिन्दू थी अधिकतर इसी समय मुसलमान बना दी गयी। तहनगढ़ के यादव क्षत्रिय भी इसी समय बड़ी संख्या में मुसलमान बनाये गये, जो अलवर के इतिहास में खानजादाओं के नाम से विख्यात रहे हैं। खानजादाओं का इतिहास अलवर के इतिहास में उल्लेखनीय है। संवत् 1549 में अलावलखाँ खानजादा ने अलवर का दुर्ग निकुम्भ क्षत्रियों से छीन लिया और इस बार उनकी ऐसी हार हुई कि वे यह प्रान्त छोड़कर ही संयुक्त प्रान्त में चले गये। अलावलखाँ ने निकुम्भों द्वारा निर्माणत अलवर-दुर्ग का परकोटा खिंचवाया। उनका पुत्र हसनखाँ मेवाती बड़ा वीर पुरूष हो गया ।

मुगलकालीन व्यवस्था से भी अलवर जिला बहुत प्रभावित हुआ । राणा सांगा और हसनखाँ मेवाती देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटे। हसनखाँ को अलवर शहर के स्थायी मरघट हसनकी में दफनाया गया और राणा सांगा खानवा से घायल स्थिति में लाये गये । किन्तु बसवा के पास आते-जाते उनके प्राण पखेरू उड़ गये और उनकी समाधि वहीं बनायी गयी, जो आज भी बसवा में रेल की पटरी के पास बने चबूतरे में अपनी अतीत गाथा कह रही है। राणा सांगा को हराकर बाबर इधर आया और उसने अलवर के दुर्ग में विश्राम किया। अपने छोटे पुत्र हिन्दात को यह स्थान जागीर में दे दिया। जब हुमायूँ का भारत में पुनः अधिकार हो गया तब तुर्दीबेगखाँ यहाँ का शासक नियुक्त हुआ और हसनखाँ के भतीजे जमालखाँ की बड़ी पुत्री से हुमायूँ ने और छोटी से सेनापति बहरामखाँ ने विवाह किया। इसी से बहरामखाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म हुआ था। सम्राट अकबर ने अपने बहनोई मिर्जा शरफुद्दीन को यह देश जागीर में दिया। बादशाह औरंगजेब ने आमेर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह को यह प्रान्त जागीर में दे दिया, किन्तु अलवर के किले का महत्त्व जानकर इसे फिर अपने अधिकार में लेकर मिर्जा अब्दुर्रहीम को अलवर का

किलेदार बना दिया। औरंगजेब के समय से ही दिल्ली की बादशाहत निर्बल हो गयी और बाद में अवसर देखकर भरतपुर के राजा सूर्यमल ने अलवर पर अपना अधिकार जमा लिया। सूरजमल और उनके पुत्र जवाहरसिंह ने अलवर प्रान्त को अपने बल और पराक्रम के कारण अपने अधिकार में रखा, किन्तु जवाहरसिंह के ही समय में अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंह ने अपनी वीरता, बुद्धिबल और पराक्रम से भरतपुर और जयपुर का कुछ भाग छीन कर अलवर राज्य की स्थापना की।

अलवर राज्य की स्थापना - राजा प्रताप सिंह

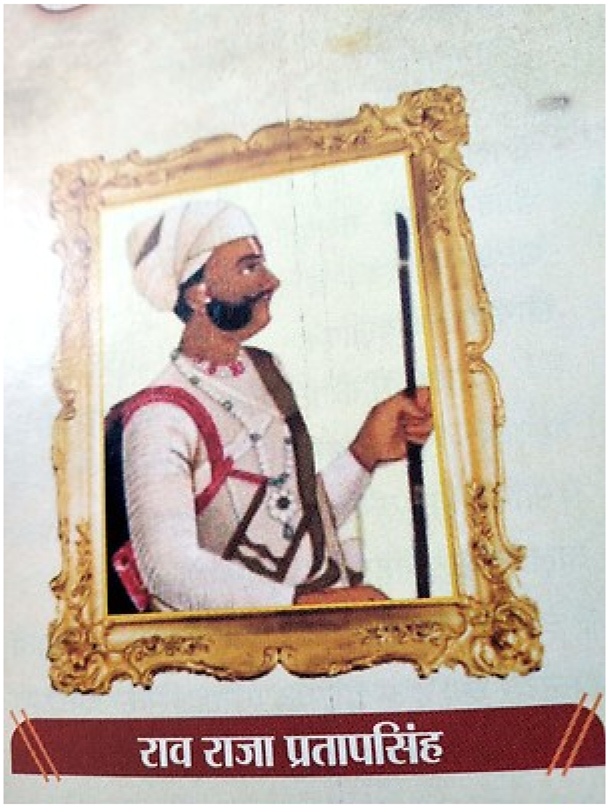

राजा प्रताप सिंह

भरतपुर और जयपुर के राज्यों में मांवड़े-मँढ़ोली के पास घोर युद्ध हुआ तथा राव राजा प्रताप सिंह के कारण जवाहरसिंह को हा अकर भागस समय दोनों राज्यों की शक्ति क्षीण जानकर असनी नीतिकुशलता और वीरता से जयपुर तथा भनतपुर राज्य के बहुत से भाग पर अधिकार व डाली। सन् 1770 में राजगढ़ को नये ढंग पर बसाकर और एक सुदृढ़ दुर्ग बनाकर प्रथम उसे अपनी राजधानी बनाया। सामरिक दृष्टि से लिए सन् 1775 में उन्होंने

अलवर के दुर्ग का अपने अधिकार में कर लिया और अलवर को राजधानी बनाया। बादशाह शाहआलम इनकी वीरन्हें रावराजा की उपाधी एवं पंचहजारी मनसब देकर इनका सम्मान बढाया। धीरे-धीरे इन्होंने अपनेमें चरखी-दादरी और पश्चिम में पिरागठ औ, दौसा तक बढ़ा ली।

राज्य स्थापना केबकमय राव राजा के सामनितीन प्रबल शक्तियां थी- एक मरहठा, दूसरे बादशाही सेना और तीसरे जयपुर राज्य, किन्तु क्रम के इन्होंने सबको काबू में कर अपने नवनिर्मित राज्य को जमाया। इनका अधिकतर समय घोड़े की पीठ पर ही युद्ध करते एवं राज्य क बड़े वीर राजनीतिज्ञ, उदार- हृदय धर्यवान राजा थे। बड़ी से बड़ी आपत्ति में संघर्ष करने को तत्पर नहते थे। इन्होंने अपनी पैतृक जन्म-भाषा पढ़ी तथा रामायण, महाभारत ,पुराणों और वीरों की कथा को सुनकर अपने वंश के गौरव को जाना तथा भारतीय राजनीति का महाराजा उदयकरणजी के जेष्ठ पुत्नरेवीरसिंह के धर्मवश राज्य त्याग कर देने पर इनकी 15 वीं पीढ़ी मे ंरावकी टीकाई शाखा में राज्य रके अपनी तथा वंश की कीर्ति को गये।

महाराव राजा बखतावर सिंह

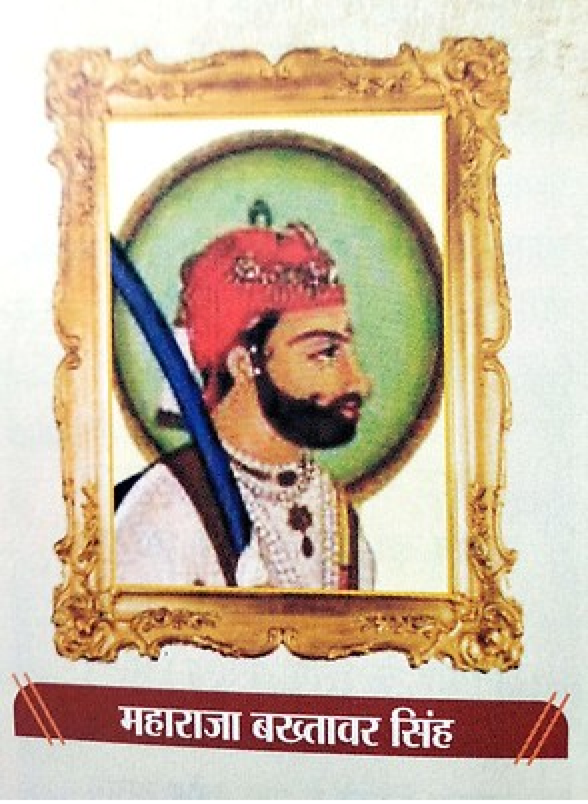

महाराव राजा बखतावर सिंह

रावराजा प्रतापसिंह जी के उपरान्त अलवर राज्य के कस्तार में रावराजा बख् वरसिंह जी ने विशेष योगदान दिया। जिस समय ये सिंहास व्यवस्था केवल 12 वर्ष की थी, प अपनी स्वाभाविक वीरता और बुद्धिमता से उन्होंने सभी मंत्रमुग्ध कर लिया। इनके समय में भी अनेक, किन्तु अपनी बुद्धि एवं वीरता के कारण इन्होंने सभी उपद्रवों को दबा दिया। सन् 1792 में जयपुर नरेश श्री प्रतापसिंह की सम्मति य पर चढ़ाई कर दी। रावराजा ने इस उपद्रव को बड़ीसुझ-बूझ के साथ समाप्त किया। बाहर के हमलों से तो इन्होंनें राज्य का बचाव किपद्रवों को भी उन्होंने बड़ी समझदारी से दबाया। बड़ी-बड़ी शक्तियों से मेल करने पर भी इस प्रान्त के मेव और ठाकुरों ने जहाँ-तहाँ उप0 में कौलानी में दो हजार मेवों ने इकट्ठे होकर प्रान्त में लूट-मार मचा दी, तब राजा ने इस अराजकता को समाप्त किया। मरहठों का। सारा ही राजपूताना इनके अत्याचारों से दुःखी था। लार्ड लेक ने अलवर राज्य की सहायता से लासवार हराया कि वे फिर इधर लौटकर नहीं आये।

19 नवम्बर 1803 को अंग्रेजों से अलवर राज्य ने संधि की और लासवारी की लड़ाई के अमूल्य योगदान के कारण अंग्रेजों ने राठ, नतथा कनगढ़ और तिजारा अलवर राज्य को दिया। इस प्रकार इ राज्य की नीवं को सुदृढ़ कर उसे विस्तार दिया।

रावराजा बख्तावरसिंहजी बड़े धर्म-प्रेमी, कवि एवं सहृदय राजा थे। ये बड़े दानी और ाला-प्रेमी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही कर अपनी धर्मनिर्पेक्षता का परिचय दियासन्राज्य की प्रशंसा और महाराज की गुणग्राहकता को सुनकर दूर देशों के अनेक विद्धान अलवरय में राज्य में उनका यथोचित सम्मान हुआ। सन् 1814 में राव राजा का देव प्रयाण हो गया। इनकी महारानी मूसी इनके साथ सती हो के सिटी पैलेस एवं कलेक्टर कार्यालय के पीछे सागर पर अपने अतीत का वैभव लिए सागर पर खड़ी है। इनके दत्तक राजकुमार विनयसिंह जीजससन पर आसीन हुए।

महाराव राजा श्री विनय सिंह

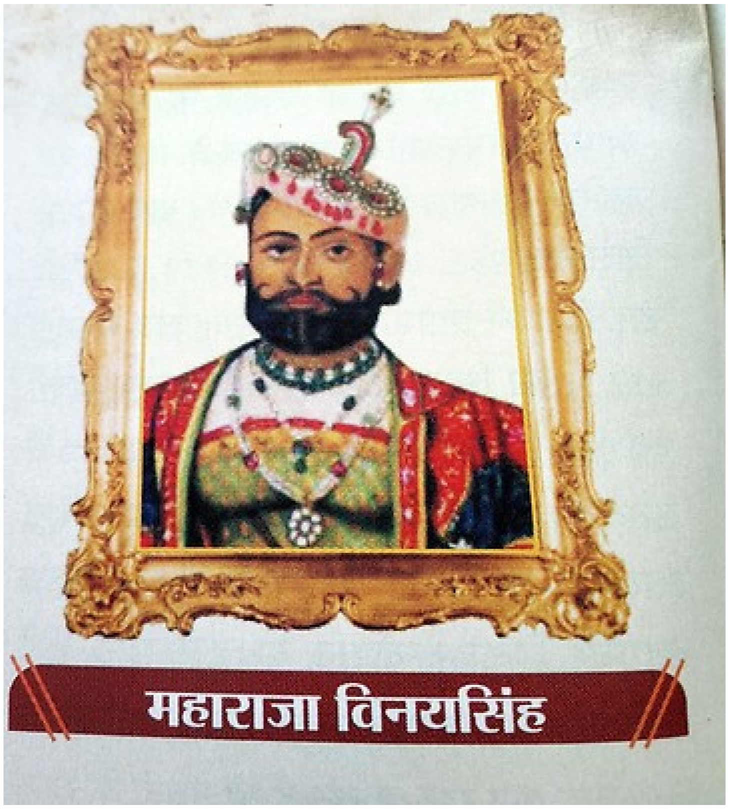

महाराव राजा श्री विनय सिंह

जब श्री विनय सिंह राजगद्दी पर बैठ उस समय तक मुगल राजवंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। दिल्ली में अकबरशाह द्वितीय नाममात्रद्ध में मरहठों का निर्णय हो ही चुका था। श्री बख्तावरसिंहजी ने अंग्रेजों से संधि करानज्य का विस्तार कर ही लिया था, ऐसी स्थितआवश्यकता थी जो राज्य के कलात्मक परिवेश की अभिवृद्धि कर राज्य को सुदृढ़

करते। रानी मूसी (खवासवाल) एक पुत्र और 6क पुत्री छो सती हो गयी थी। इनके पुत्र बलवंतसिंह ने राज्य के लिए झगड़ा किया। अंत में अंग्रेज सरकार ने विरोध खत्म करने के लिएसन् 1826 में रबलवन्तसिंहजी को दिला दिया। वे उसे प्रान्त के राजा हुए और तिजारे को उन्होंनं राजधानी बनायमहल, छतरी, विनय-विलास पैलेस व में राजऋषि ;कॉलेज द्ध आदि ब उसे कलात्मक दृष्टि से सुसंपन्न किया।

नीकच और कोलानी के मेवों ने महाराजा विनयसिंह के समय में भी उपद्रव मचाया, पर इन्होंनं दोनों स्थानों पर गढ़ बनवाकर इनका दमनयवस्था बोर्ड स्थापित किये । जिनमें राजनीति और धर्मानुसार सुनवाई होने लगी। सन् 1838 तक हिन्दी-भाषा तथा नागरी लिपि में रर दिल्ली से शाही पदाधिकारी इस राज्य में आकर नौकर हुए, जिन्होंनें फारसी भाषा का व्यवहार और प्रचार किया। सन् 1857 के गदरसहायता कर गदर को दबाने में योगदान दिया। थोड़े दिन बाद ही सन् 1857 में विनयसिंह जीमहाराजा विनयसिंहजी ने बड़े सुख, शान्तघ्नता के साथ राका सुख भोगा।

कलात्मक अभिरूचि के कारण ये अधिक खर्चीले थे, जिससे राज्य-कोष में कमी रहती थी और प्रजा की आर्थिक स्थिति भी दयनीय रहती थी।

सवाई शिवदान सिंह

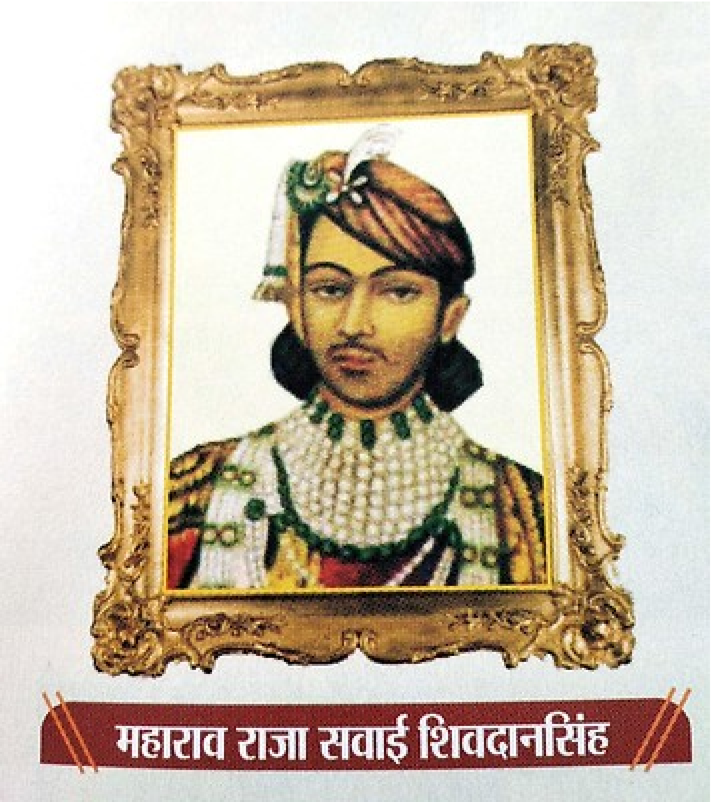

सवाई शिवदान सिंह

महाराजा विनय सिंह के उपरान्त सवाई शिवदान सिंह गद्दी पर बैठे। ये विद्याप्रेमी एवं संगीत विद्या में विशेष रूचि रखते थे। इनके समघट लगा ही रहता था। उनकी प्रवृति विलासी थी, किन्तु उनके समय में संगीत और चित्रकला की अलवर राज्य में बहुत उन्नति हुई। गदरति स्थापित हुई तब सन् 1863 में अंग्रेजी सरकार की ओर से आगरे में शाही दरबार हुआ। इस महती राजसभा में महा अपने सारगर्भित भाषण से सभासदों एवं वायसराय को मुग्ध कर लिया था।

राजा शिवदान सिंह अपनी विलासी प्रवृति के कारण बदखर्च अवश्य थे, जिसके कारण राज्य की आर्थिक स्थिति काफी डावांडोल हो गई सन् 1870 में राज्य का कार्य भार अपने हाथ में ले लिया । मेजर केडल यहाँ के पोलिटकल एजेन्ट नियुक्त होकर आर्थिक स्थिति सुधारने अनेक सुधार किए। अंग्रजी सिक्का भी समय से चालू हुआ। सन् 1874 में महाराजा का स्वर्गवास हो गया।

कर्नल केडल के नाम पर अलवर शहर में मुख्या बाजार स्थापित हुआ जो आज भी केडलगंज के नाम से जाना जाता है ।

सवाई मंगल सिंह

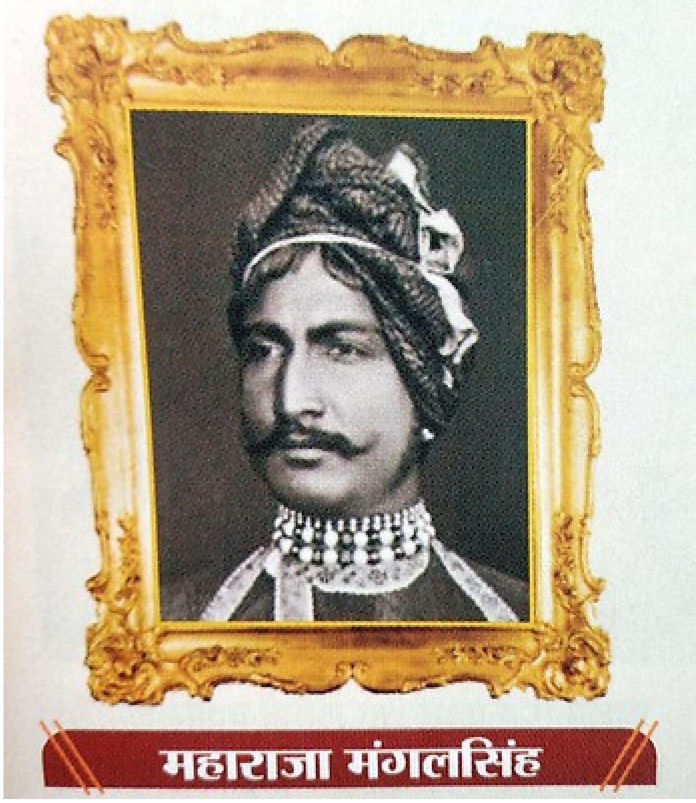

सवाई मंगल सिंह

राजा मंगलसिंहजी 15 वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे तथा इसी समय से अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू का विशेष अध्ययन किया। राज्में इन्होंनं अनेक प्रयत्न किए। सन् 1877 के भारत व्यापी महादुर्भिक्ष में इन्होंनें अकाल पीड़ितों की सहायता कर अपनी उदारता का परि राज्य-कोष में धन एकत्र क लसमाज सेवा में लगाया। महाराजा को साधु, महात्मा और पंडितो से मिलने तथा उनसे वार्तालाप करने का देश जाने से पूर्व अलवर नगर में आये थे तब महाराज ने धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न उनसे पूछे थे। 33 वर्ष की अवस्था में महाराज का अचानकर्गवास हो गया, किन्तु 18 वर्ष के शासन में ही विद्या प्रचार एवं प्रजाहित संबंधी बहुत से सुधार करके अपनी तथा राज्य की कीर्ति को अमर कर दिया ।

आधुनिक काल

महाराजा जय सिंह

महाराजा जय सिंह

अलवर के इतिहास में महाराजा जयसिंहजी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। 10 दिसम्बर 1903 को इन्होनें राजगद्दी सम्भाली। इनसे पूर्सम्मति से राज्य कार्य चलाते थे। उन्ही दिनों सन् 1898 में मिस्टर औडवायर ने भूमि का 20 वर्षीय सुधार किया और सन् 1901 में रियार राज्य में डाकखाने खुलवाए जिससे जनता के लिये डाक का कुशल प्रबंध शुरू हुआ।

राष्टं भाषा हिन्दी के प्रति महाराज का विशेष प्रेम था। उन्होंने शासन-कार्य हेतु हिन्दी को राजभाषा बनाने का आज्ञा दी। राज्य 19 में निःशुल्क शिक्षा देने की आज्ञा जारी की तथा उच्च शिक्षा हेतु राजर्षि कॉलेज की स्थापना की। अनेक सामाजिक सुधार राज्य में वाह को

निषेध किया गया । मादक वस्तुओं से जनताको बचाने के लिए उन पर भारी टैक्स लगाया। खाद्य पदार्थों में मिलावट न हो , इये। मनुष्यों के साथ क्या पुशओं तक के साथ निर्दय व्यवहार को उन्होंनं रोकने के लिय नियम बनाये। सन् 1924 में जागीर-नियम स्थायी क को सुदृढ़ किया। पेरिस यात्रा सीढ़ियों पर गिर जाने से महाराज का देहावसान हो गया।

सवाई तेज सिंह

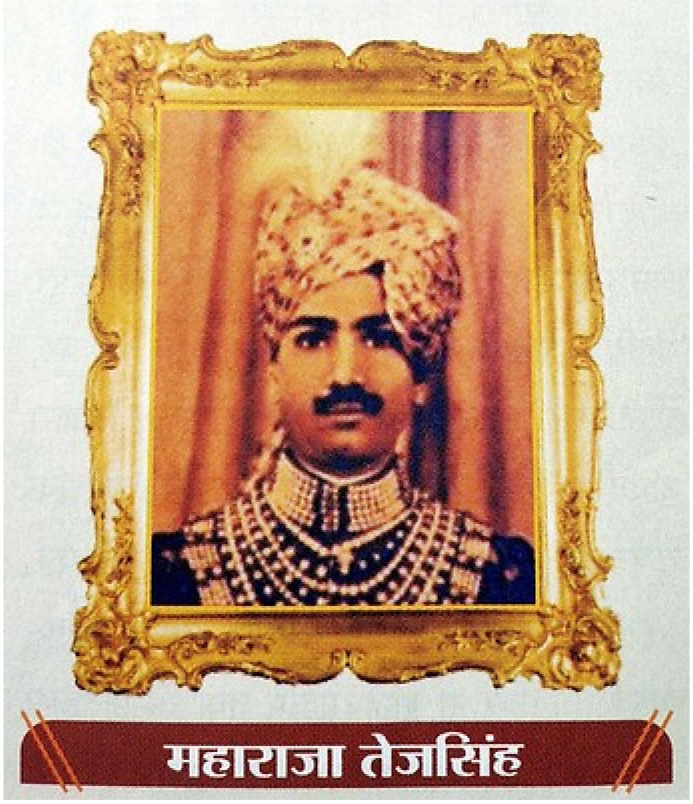

सवाई तेज सिंह

महाराज के उपरान्त थाना ठिकाने से गोद आकर श्री तेजसिंहजी गद्दी के हकदार हुए। अपनी सरल एवं सादा प्रवृति से उन्होंनें राज्य कासतों के विलीनीकरण तक अलवर पर राज्य करते रहे। इस प्रकारलगभग दो सौ वर्षो के राज्यकाल में नरूवंशियों ने अलवर राज्य की बागडो राज्य को उन्नत एवं समृद्धशाली बनाया। स्वतन्त्रता के उपरान्त पहले मत्स्य राज्य की इकाई के रूप में और फिर वृहद राजस्थान में अलव विलीन हो गया। आजादी के बाद भारत सरकार ने राज वंश समाप्त कर पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित की और तेजअंतिम महाराजा तेजसिंह क में स्वर्गवास दिल्ली में हो गया और वहअंतिम संस्कार भी हुआ।

2. अलवर के प्राचीन ऐतिहासिक नगर एवं गांव

मत्स्यपुरी

राजगढ़ के काफी करीब पहाड़ियों से घिरा छोटा सा एक गांव माचैड़ी है। पहाहत्पर एक मध्यकालीन महल और उसके नीचे कुएँ, बावड़ियाँटे हुए मत्स्यपुरी का वैभव। ऐतिहासिक दृष्टि से मत्स्यपुरी अर्थात् माचैड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाभारत का में मत्स्य प्रदेश का । उस समय उत्तरी भारत अनेक राज्यों में बँटा हुआ था। बौद्ध-साहित्य में उस युग के 16 महाजनपदों के नाम मिलते हैं, जिनमें काशी, कौपांचाल, अवंति, गंधार आदि के साथ’ वमत्स्य’ और शूरसेन के भी नाम है। मत्स्य महाजनपद की राजधानी ’ विराटनगरी’ अर्थात् बैराठ ; वर्तमान में विराटसेन की मथुरा।

पुराणों के अनुसार प्राचीनकाल में मधु दैत्य के नाम पर मधुपुरी (मथुरा) शूरसेन देश की राजधानी थी। मधु के पुत्र धुंधु को मार कर सूर्यवंशी राजा यहाँ पर राज्य करने लगे। धुंधु के नाम पर ही इस प्रदेश का नाम ढुंढार पडा। इसके उपरान्त चन्द्रवंशी राजा उपरिचर के पुत्र मत्सिल का इधर राज्य हुआ उसने मत्स्यपुरी को अपनी राजधानी बनाया। राजा मत्सिल के पुत्र विराट ने विराट नगरीबसा कर उसे राजधानी बनाया। इस प्रकार राजा मत्सिल के नाम पर इस प्रदेश का नाम मत्स्य पड़ा।

प्राचीन काल में मत्स्य-प्रदेश के निवासी अपनी वीरता और साहस के लिए बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। मनु ने अपनी ’ मनुस्मृति’ में यहाँ के लोगों को उन वीरों में लिखा है, जो सेना के हरावल (सेनानायक) होने के योग्य होते थे। चीनी-यात्री हेवननसांग ने अपनी यात्रा के विवरण में लिखा है कि इस देश के लोग बहादुर और साहसी थे। मत्स्य-प्रदेश शत्रुओं द्वारा सुरक्षित और एक गुप्त देश था। यही कारण है कि 13 वें वर्ष के अज्ञातवास में पाण्डव इन्हीं प्रदेशों में रहे थे।

माचैड़ी का सामरिक महत्त्व होने के कारण यह स्थान राजनैतिक दृष्टि से विशेष महत्त्व का रहा है। कंन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों ने 9 वीं शताब्दी में दूर-दूर तक अपना राज्य फैलाया, जिसमें मत्स्यपुरी के अधिकार की बात इतिहास में आती है। 9 वीं और 10 वीं शताब्दी में कन्नौज के राजाओं के अधिकार में उनके सामन्तों द्वारा सुचालित माचैड़ी का राज्य ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय रहा है।

गुर्जर-प्रतिहारों का कन्नौजी वैभव धीरे-धीरे विलुप्त होते ही उनके वंशजों ने माचैड़ी, देवती, राजौरगढ़ आदि छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य बना लिए। दिल्ली में फीरोजशाह के शासनकाल

में (15 वीं शताब्दी) यहाँ पर गुर्जर-प्रतिहार (बड़गूजर) क्षत्रियों का बोलबाला था, जिनमें राजा आसलदेव के पुत्र महाराजा गोगादेव महान् पराक्रमी व्यक्ति थे। इनकी राजधानी माचैड़ी या मत्स्यनगरी थी जो उन दिनों वैभवशाली नगरी थी। उस काल के जितने भी कुएं, बावड़ियाँ, तालाब यहाँ निर्मित हैं, उनसे जनता की दानशीलता एवं परोपकार का अच्छा परिचय मिलता है। सम्राट अकबर के शासनकाल तक गुर्जर-प्रतिहारवंश ही यहाँ पर शासन करता रहा।

अपने स्वाभिमान के लिए ये राजा प्रसिद्ध रहे हैं। राणा प्रताप की भांति इन राजाओं ने भी अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं की। इसके बदले उन्होंने अपने सूर्यास्त को सहन कर लिया। इस वंश के राजा राजपाल के पौत्र तथा राजा कुंभ के द्वितीय पुत्र अशोक (उपनाम राजा ईश्वरमल) ने बादशाह अकबर को डोला (कन्या) देकर संबंध नहीं किया तथा आमेर नरेश मानसिंहजी से बिगाड़ हो जाने के कारणअन्त में दिल्ली और जयपुर की सेना ने यह प्रान्त बड़गूजरों से छीन लिया तथा इसको आमेर राज्य के अंतर्गत मिला दिया । नरूवंश के राव कल्याणसिंह ने मिर्जाराजा जयसिंह को प्रसन्न करके कामा-खोहरी का राज्य लिया तथा वहाँ के मेवों का दमन किया। मेव दमन के पश्चात् सन् 1639 में इस प्राचीन मत्स्य देश की राजधानी माचैड़ी को जागीर स्वरूप प्राप्त किया उस समय इस जागीर 211 गांव थे । जिसमें माचैड़ी, राजगढ और आधा राजपुर था। राव कल्याणसिंहजी के वंशजों का भाग्य प्रबल था। राव कल्याणसिंह के पश्चात् राव उग्रसिंह माचैड़ी के अधिपति नियुक्त हुए । राव उग्र सिंह के बाद इनके पुत्र राव हठीसिंह और राव कुकन्द सिंह क्रमशः माचैड़ी की गद्दी पर बैठे। इनके पश्चात् राव कल्याणसिंह के पौत्र और आनन्दसिंह के पुत्र राव तेजसिंह माचैड़ी के स्वामी हुए। तेजसिंह के पश्चात् जोरावरसिंह और उनके ज्येष्ठ पुत्र मोहब्बतसिंह माचैड़ी के अधिपति बने तथा इनके अनुज जालिमसिंह को बीजवाड़ की जागीर प्राप्त हुई।

राव मोहब्बतसिंह का भाग्य प्रबल था। वे धर्मानुरागी एवं प्रतापी पुरूष थे। इन्होंने ही अलवर राज्य के संस्थापक महाराव प्रतापसिंहजी को जन्म दिया। संवत् 1813 के यद्ध में मोहब्बतसिंह जी का देहावसान हो गया तथा उनके पश्चात् श्री प्रतापसिंह जी माचैड़ी के अधिपति बने। महाराव प्रतापसिंह ने अपने पिता के स्मारक स्वरूप एक विशाल छतरी का निर्माण करवाया। जो अब भी राजगढ़ में विद्यमान है। राव प्रतापसिंहजी ने यहाँ देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया। राजगढ़ को और उसके उपरान्त अलवर को अलवर राज्य की राजधानी बनाने के कारण माचैड़ी एक गाँव मात्र रह गया, पर बड़गूजरों और नरूवंशियों के हृदय में आज भी माचैड़ी के लिए सम्मान हैं। इस प्रकार महाभारत काल से लेकर 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक माचैड़ी नगर विशेष महत्त्वशाली रहा है। आज भी बड़गूजरों का पहाड़ी महल, रानी का कुआँ, मन्दिर आदि माचैड़ी के अतीत की गाथा सुना रहे हैं।

अलवर राज्य की प्रथम राजधानी राजगढ़

तीन तरफ पहाड़ों से घिरा , बाग और बगीचों का नगर राजगढ़ मत्स्यपुरी अर्थात् आधुनिक माचैड़ी से पांच किलोमीटर दूर है। बाघौला बांध से आगे पहाड़ी पर सुरक्षित सृदृढ़ किला जिसके नीचे ऊँची-ऊँची श्वेत अट्टालिकाएँ, महल और मन्दिर। चौपड़ का छोटा सा बाजार। आज भी वंशीपत्थर से जड़ी हुई चौपड़ की सड़कें और सड़कों के दोनों और कतार नीचे दूकानें ग्राहकों का इन्तजार करती हैं।

राजगढ़ बाग और बगीचों का शहर है। नगर के चारों ओर आम, नींबू, जामुन आदि के बगीचे दूर-दूर तक फैले हुए हैं। बगीचों के बीच में सुन्दर छतरियाँ, महल और फव्वारों की व्यवस्था राजगढ़ के सामंती वैभव की जर्जर अवस्था की झाँकी आज भी देती हैं। शहर के पीछे पुराना और प्रसिद्ध इतिहास है, जो मीणाओं, बड़गूजरों, कुशवाहों आदि से सम्बन्धित है।

ऐसा लगता है कि 9 वीं शताब्दी से पूर्व तक राजगढ़ तथा आसपास के इन स्थानों पर मीणा जाति अधिक प्रभावशाली होने के कारण यहाँ राज्य करती थी। आमेर, दौसा तथा क्यारा नगरी आदि मीणाओं के प्रमुख गढ़ थे, अतः राजगढ़ भी उनके अधिकार में हो तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

गुर्जर-प्रतिहारों ने कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया तथा मत्स्यपुरी और राजगढ़ तक अपने राज्य का विस्तार कर राजगढ़ को विशेष महत्व दिया। गुर्जर-प्रतिहारवंशीय राजा बाघसिंह जिसको अब लोग बाघराज के नाम से देवता के समान पूजते हैं और जिसकी प्रतिमा अब भी विद्यमान है, ने राजगढ नगर की नींव डाली थी। बाघसिंह अथवा बाघराज (व्याघराज) का राजगढ़ के इतिहास में आद्वितीय स्थान है। वे एक परम प्रतापी पुरूष थे। उनके नाम से ही उनके प्रतापी होने की बात ध्वनित होती है। राजगढ़ क्षेत्र में आज भी मान्यता है कि व्याघराज रात में बाघ के रूप में राज्य की परिक्रमा करके उसे सुरक्षित बनाते थे । प्रातः उनकी पत्नी उन पर पानी ड़ाल कर उठाती थी तब वे मानव रूप में आजाते थेऔर शासन करते थे । एक बार उनपर पानी ड़ालकर नहीं उठाया गया तो वे बाध रूप में ही रह गए । राजगढ़ में आज भी पुलिस थाने के पीछे बाघराज की गर्दन रहित मूर्ती स्थापित है ।

राम, कृष्ण, हनुमान, बुद्ध, महावीर के मन्दिर तो सम्पूर्ण देश में प्राप्त हैं ही किन्तु यहाँ पर ऐसे व्यक्तियों की भी पूजा होती रही है जो परहित को अपना परम धर्म मानते हैं, ऐसे हैं बाघराज या व्याघ्रराज। इनकी पूजा अर्चना इस क्षेत्र में एक देवता की भांति होती है। प्रत्येक शुभ कार्य में इनको अग्रण्य माना जाता है। यहॉ की जनता की इनमें गहरी आस्था, श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास है। ये महापुरूष हैं जिन्होंनें राजगढ़ के आसपास बाघौला आदि स्थानों को बसाया। बाघौला बांध का नामकरण भी इनके ही नाम पर पड़ा है। लार्ड कनिंघम ने भी इनका वर्णन किया है।

बाबा बाघराज के मन्दिर के पिछवाड़े पर तीन जैन प्रतिमायें (दिगम्बरी) अवस्थिति हैं, जो यह सिद्ध करती है कि यहाँ पर कभी जैन-धर्म का अच्छा प्रभाव रहा होगा। कुछ जनता भ्रमवश उन प्रतिमाओं को ही बाघराज की प्रतिमा समझकर पूजा करती है। जो भी कुछ हो, बाघराज की पूजा यहाँ पर एक पूजनीय देवता के सदृश होती हैं ये ही राजगढ़ के प्रथम संस्थापक माने जाते है। इनके पश्चात् राजा राजदेव ने इस बस्ती को विस्तृत एवं वैभवयुक्त किया तथा इस नगर को राजगढ़ नाम दिया। तभी से इस प्राचीन नगर के उत्थान-पतन की अनेक गाथायें प्रचलित रही हैं।

राजगढ़ की प्राचीनता के उपकरण अब भी यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। बाघौला बांध के कटाव पर निकली हुई जैन प्रतिमाओं को देखकर प्राचीन समय की शिल्पकला तथा जनता की तत्कालीन धार्मिक भावनाओं का सहज परिचय मिलता हैं ।औरंगजेब के शासनकाल में आमेर के नरेश मिर्जा राजा जयसिंहजी थे, अतः राजगढ़ भी उनके राज्य में रहा। इस समय से राजगढ़ की अवस्था में परिवर्तन हुआ। माचैड़ी, राजगढ़ नरूवंशियों की जागीर में थे ही, अतः पहले से ही यहाँ की शासन व्यवस्था जयपुर राज्य के तत्वावधान में होते हुए भी माचैड़ी के जागीरदारों के हाथ में अधिक रही।

राजगढ़ के इतिहास में 18 वीं शताब्दी के अन्त में परिवर्तन आया। महाराव राजा प्रताप सिंह ने समय पाकर अलवर का अलग राज्य स्थापित किया और सर्व प्रथम राजगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। महाराव प्रताप सिंहजी के बाल्यकाल से ही ऐसे लक्षण प्रकट होते थे कि वे एक प्रतापी पुरूष होंगे। राजगढ़ एवं माचैड़ी वन और उपत्काओं की भूमि है। हिंसक जन्तुओं का उस समय कोई अभाव नहीं था। महाराव प्रताप सिंह के लिए एक मात्र सैर करने का यही स्थान था। वे इन जन्तुओं का शिकर भी करते थे, जिससे उनको निड़र व वीर बनाने में बहुत सहायता की। प्रथम तो प्रतापसिंहजी ने जयपुर नरेश का सरंक्षण ग्रहण किया, बाद में भरतपुर नरेश जवाहरसिंह का, फिर अवसर प्राप्त कर पृथक से अलवर राज्य की स्थापना की।

महाराव प्रतापसिंहजी एक कुशल शासक थे। जिन्होंनं सन् 1770 में राजगढ़ का नवीन निर्माण कराया तथा इसको ही अपनी राजधानी बनाया। राजगढ़ का दुर्ग इनका ही बनवाया हुआ हैं। कुछ काल पश्चात अपने चातुर्य से अलवर का किला भी भरतपुर वालों से हथिया लिया। इस प्रकार प्रताप सिंह का प्रताप दिनों-दिन बढ़ने लगा। इनका अधिकांश समय राज्य को सुदृढ़ करने में ही व्यतीत हुआ। सन् 1790 में रावराजा प्रतापसिंहजी का स्वर्गवास हो गया तथा उनके स्थान पर उनके दत्तक पुत्र बख्तावरसिंजी सिंहासनासीन हुए। ये अत्यन्त कला प्रेमी थे। राजगढ़ के शीश-महल का निर्माण सम्भवतः इनके समय में ही हुआ, जो अलवरशैली की चित्रकला में श्रेष्ठ उदाहरण है। इनके समय में भी राजगढ़ राजधानी रहा।

रावराजा बख्तावर सिंह के पश्चात् विनयसिंह सन् 1814 में गद्दी पर बैठे। इनके समय से राजगढ़ से राजधानी को हटा लिया गया, किन्तु उसके महत्त्व में कोई कमी नहीं आई। विनय सिंह ने राजगढ़ के चौतरफा एक परकोटा तथा खाई बनवाईं जो सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्व की थी।

महाराजा शिवदान सिंह (सन् 1857-1874) और महाराजा मंगलसिंह (1874-1892) के समय में भी राजगढ़ की बहुत उन्नति हुई। मंगलसिंहजी के समय में राजगढ़ को तहसील बनाया गया। महाराजा जयसिंह जी (1892-1937) के शासनकाल में राजगढ़ को बहुत महत्त्व प्रदान किया गया। अपने शासन में सन् 1901 में राजगढ़ में पोस्ट ऑफिस खोला और सन् 1961 में अस्पताल की स्थापना की, जिससे जनता को अनेकानेक सुविधाएँ उपलब्ध हुई। समाज की अनेक कुरीतियों को समाप्त करने के भी महाराज जयसिंहजी हिमायती थे। महाराज तेजसिंहजी ने भी अपने पूर्वजों की भूमि राजगढ़ को विस्मृत नहीं किया तथा उसकी प्रगति में सहायक हुए।

तिजारा

अलवर की अनेक कहानियों से संयुक्त एवं वियुक्त तिजारा नामक नगर अलवर नगर से करीब 55 किलोमीटर दूर हैं। यह अलवर के प्रमुख नगरों में से एक है, तथा इसकी भी उतनी ही गौरवमय गाथायें प्रचलित हैं, जितनी कि अवलर की। इससे सम्बद्ध अनेकों जनश्रुतियां इसकी प्राचीनता की द्योतक है।अलवर की उत्तर-पश्चिम सीमा का प्रहरी तिजारा के बसने के सम्बन्ध में भी कई जनप्रवाद प्रचलित हैं। पितृभक्त श्रवणकुमार की तीर्थयात्रा में एक विश्राम स्थल यह भी था, जहाँ पर कि उसने अपनी कावड़ को टिकाकर माता-पिता से किराये की याचना की थी। कुछ लोग इसको महाभारत कालीन प्राचीन त्रिगर्त नगर का अपभ्रष्ट रूप तिजार बतलाते है। कनिंहम के लेख एवं आर्चियोलोजिकल सर्वे भाग 20 में ज्ञातव्य है कि महाभारत काल में युदवंशी तेजपाल त्रिगर्त के राजा सुशर्मा के पास श्रोद्विष्ट नगर था। उसने यहाँ कि भूमि को नगर बसाने योग्य जानकर तिजारा नगर बसाया। अन्य स्थान पर कनिंहम तिजारा को बसाने का श्रेय तोमरवंशी अन3पाल द्वितीय के पुत्र तेजपाल को जाता है। जो कुछ भी हो, तिजारा एक ऐतिहासिक नगर है।

तेजपाल के समय में ही इस क्षेत्र में इस्लाम का प्रदार्पण हुआ, जिसके फलस्वरूप बाद में चलकर यह क्षेत्र मेवात के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ’मिराते मसूदी’ के अनुसार तिजारे के शासक तेजपाल एवं उसके भाई धंधगढ के शासक करणपाल ने 420 हि0 (1030 ई0) में मुहम्मद के भानजे मसूद की सेना पर अचानक आक्रमण किया तथा मीर इस्माइल बारह हजारी को मार दिया। इसके कारण मुस्लिम सेनाओं ने तेजपाल को बन्दी बना लिया।

तिजारा का बहुत सा इतिहास अन्धकार के गर्त में समाया हुआ है। खानजादों के समय में इस नगर को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई तथा इस समय से ही इसका इतिहास मिलता है। खानजादों के पूर्व पुरूष हिन्दू ही बताये जाते हैं, जिन्होंने फीरोज तुगलक के समय में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तथा राज्य में अच्छी पदवी प्राप्त की।

सैयदों के शासनकाल में भी दिल्ली सल्तनत की सेनायें कई बार तिजारा की तरफ आयी। सैयदों के शासन के अन्तिम दिनों में मेवात के खानजादों की शक्ति बहुत बढ़ गयी। बहादुरखाँ के पोते जलाल खाँ के उत्तराधिकारी ने दिल्लीके सपीपस्थ लाडूसराय तक अपनी शक्ति का परिचय दे दिया था। यह देखकर लोदीवंश के संस्थापक बहलोल लोदी ने सं. 1451 में मेवात पर आक्रमण किया एवं अहमदखाँ से सात परगने छीन लिये, जिनमें तिजारा मुख्य था। इस समय इन परगनों का शासन-केन्द्र तिजारा ही बना।

सिकन्दर लोदी ने तिजारे का शासनभार अपने अनुज अलाउद्दीन लोदी को सौंपा। इसने तिजारा में एक कच्चा बांध तथा विशाल भर्तृहरि की गुम्बद का निर्माण कराया। कुछ लोग इस समय तक भी यहाँ पर खानजादों का शासन मानने के ही पक्षपाती हैं। वे अलाउद्दीन के स्थान पर अलावल खाँ का शासन मानते हैं। इसके पश्चात् बाबर ने तिजारा जो जागीर के रूप में अपने बड़े सेनापति चिनतैमूर सुलतान को बख्श दिया। बाबर के पुत्र मिर्जा हिन्दाल ने अलवर व तिजारा को जागीर के रूप में प्राप्त कर यहाँ पर सन् 1530 से 1540 तक शासन किया।

मलिक अलाउद्दीन मसकन गाजी जो एक खानजादा था, तिजारे का शासक रहा, जिसक मजार 'मलिक जी का गुम्बज' आज भी पुरानी तहसील के पास बना हुआ है।

बाबर की आत्मकथा के अनुसार तिजारा राजनैतिक दृष्टि से मेवात का केन्द्र बन गया था। बाबर ने स्वयं लिखा है कि उसके आक्रमण से पूर्व तिजारा 200 वर्ष से हसनखाँ मेवाती के पूर्वजों की राजधानी था। हसनखाँ मेवाती के पिता अलावलखाँ ने अपनी यादगार के लिए तिजारा का ही एक उपनगर अलावलपुर बसाया । हसनखाँ मेवाती ने सन् 1527 में खानवा के युद्ध में राणा सांगा की आरे से बाबर से युद्ध किया एवं उसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। 7 अप्रेल सन् 1527 को बाबर अलवर में आया तथा तिजारा को जागीर के रूप में चिनतैमूर सुलतान को दिया। चिनतैमूर सुलतान उसका बहुत बडा सेनापति था एवं काबुल से ही उसके साथ आया था।बाबर के पुत्र मिर्जा हिन्दाल ने, जिसे अलवर व तिजारा जागीर में मिले थे, इस नगर में और भी उन्नति की। हिन्दाल ने काजी का बाँध, लाल मज्जिद तथा सराय बनवायी। दीवानखाना जो पुरान महल कहलाते हैं, इसी के द्वारा बनवाये गये थे। असलीमपुर के पास अन्धेरी-उजाली नामक बंगला महल कहते है, इन्हीं के द्वारा बनवाये गये थे। शेरशाह सूरी द्वारा निकाल दिये जाने के कारण लाल मस्जिद अधूरी रह गयी। मिर्जा हिन्दाल के खजान्ची तोताराम मोहनदास थे। जिन्होंने तिजारा से नूह तक एक-एक कोस पर पीने के लिए पानी की बावड़ियाँ बनवायी।

अकबर का राज्यकाल भी तिजारे के लिए कम गौरव का नहीं रहा है। आइने अकबरी से ज्ञात होता है कि - '' तिजारा एक स्वतंत्र सरकार था तथा इनके आधीन इन्दौर, उझीना, उमरा-उमरी, बिसरू, पुर, पिन3्गकान, घासोड़ा, तिजारा, झमरावत, खानपुर, साकरस, सांथाहेड़ी, फीरोजपुर, फतेहपुर, और कोटला के परगने थे। तिजारा जिले का केन्द्र था। अकबर के समय में यहां हम्माम बना था, जिसका लेख अलवर संग्रहालय में मिलता है।

1556 ई. में रिवाड़ी निवासी हेमू को अकबर द्वारा कत्ल किए जाने पर मलान मीर मुहम्मद तिजारे आया ओर तिजारा तथा अलावलपुर के तमाम पठानों को कत्ल कर दिया। उसने

यहाँ पर रखे हेमू के सामान पर कब्जा किया। हसनखाँ मेवाती की भतीजी से अकबर ने विवाह किया।

अरड्ग तिजारा से प्रकट होता है कि हजरत गदनशाह भी अकबर के समय में ही तिजारे आये थे। इनकी मजार तिजारा से टपूकड़ा जाने वाली सड़क के दाहिनी ओर बना हुआ है। दरगाह गजीगदन के लिए अकबर ने 150 बीघा जमीन दी थी। सायर चबूतरा से सवा पैसा प्रतिदिन के हिसाब से रौशनी करने को दरगाह के लिए मिलता था। अकबर के शासनकाल में ही लालदास नामक रामभक्त मेव को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। रामदास प्यारेलालके पूर्वजों ने लालदास का मन्दिर बनवाया। शाहजहां के शासनकाल में सलील उल्लासखां को तिजारे का इतिहास का हाकिम नियुक्त किया, जिसने गदनशाह की खानगाह बनवाई थी। औरंगजेब के शासनकाल में चौधरी इकरामखां खानजादा ने तिजारे के हाकिम के नक्कारा व निशान छीन लिए। इस घटना से इकरामखां को कत्ल कर दिया गया।

औरंगजेब के पश्चात् मुगल साम्राज्य पतन की ओर उन्मुख होता है। इस समय भरतपुर के राजा चूडामन जाट ने तिजारा व अलावलपुर पर आक्रमण किया तथा यहाँ की जनता व सम्पत्ति को क्षति पहुँचाई।

भरतपुर के राजा सूरजमल ने किशनगढ़ का किला तथा हसनपुर के मियां मुरादशाह से प्रसन्न होकर दरगाह हसनपुर का बाहर का दरवाजा बनवाया। यह दरगाह तिजारस से 4 मील की दूरी पर है।

सन् 1757 में झिवाने के राव बहादुरसिंह से जाटों ने झिवाना छीन लिया। किन्तु नजफखाँ ने उनको निकाल दिया। नजफखां की मृत्यु के पश्चात् माधव राव सिंधिया ने मुहम्मदवेग हमदानी को परास्त कर मेवात पर अधिकर कर लिया। इसी बीच में उसे सिक्खों द्वारा भी लूटा गया। सन् 1791 में तिजारा पुनः मराठों के आधिपत्य में चला गया। यहाँ के शासक प्रबन्ध के लिए उन्होंने दो पण्डित तथा शाहबाद के मुसाहिबखां खानजादा को रखा। जल्दी ही मुसाहिबखां की अपने सहायक तिजारे के जवाहरखां से ठन गयी। यह देखकर कुछ मराठा अफसर नियुक्त किए गये। थोड़े दिन जाटों के अधिकार में रहने के पश्चात् सन् 1804 में आपा खण्डेराव मराठे ने इस पर अधिकार कर लिया तथा जार्ज थामस को यहाँ का अफसर नियुक्त किया, किन्तु मराठों का शासन अधिक दिन तक नहीं चल सका। शंकर आश्रमगढ़ में भगवान शंकर की प्रतिमा मराठों द्वारा ही स्थापित की गई थी।इन दिनों मेवों ने तिजारा को लूटने के लिए हमला किया तथा दो महीने तक झगड़ा चलता रहा। अन्त में

दीवान हरीसिंह तथा दलेलखाँ खानजादे ने मेवों को समझा बुझाकर और यहाँ के बनियों से कुछ पैसे दिलाकर तिजारा को बचाया।

सन् 1805 में लासवाड़ी के युद्ध में मराठों की पराजय हुई तथा अंग्रेजों की सहायता से द्वितीय अलवर नरेश बख्तावरसिंहजी ने यहां पर अधिकार कर लिया।

सन् 1814 में रावराजा बख्तावरसिंहजी का देहान्त हो गया। मूसी महारानी (ख्वासवाल) एक पुत्र बलवन्तसिंहजी तथा एक पुत्री चाँदबाई को छोड़कर बख्तावर सिंह के साथ सती हो गई। अब गद्दी पर विनय सिंह बैठे। राज्य की प्रजा व बलवन्तसिंह को अलवर का शासक बनाना चाहती थी, किन्तु राजपूतों के विरोध के कारण उसके सफलता नहीं मिली।

सन् 1826 में ब्रिटिश सरकार ने बलवन्तसिंहजी का अधिकार उचित ठहराया और चार लाख की आमदनी वाला राज्य का उत्तरीय भाग जिसमें तिजारा, किशनगढ़, मांढण, करनीकोट तथा मण्डावर के क्षेत्र सम्मिलित थे, रावराजा बलवन्त सिंह के अधिकार में दिए। प्रारम्भ में किशनगढ़ तथा मांढण के बदले में अलवर नरेश विनय सिंह की ओर से बख्तावरसिंहजी को दो लाख रूपये वार्षिक मिलता था शेष भाग पर वे स्वयं राज्य करने लगे तथा तिजारा को अपनी राजधानी बनाया।

बलवन्तसिंहजी ने तिजारा के एक पं. गुलाबसिंह को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इनका वंश दीवान खानदान के नाम से प्रसिद्ध है। इसी समय महाराजा बलवन्त सिंह ने अपने निवास के लिए एक भव्य महल का निर्माण कराया।

सन् 1835 में बलवन्तसिंहजी ने पहाड़ी पर किला बनवाना प्रारम्भ किया। महलों से किले तक सड़का निर्माण कराया तथा सरदारों के निवास के लिए किले के नीचे ही अच्छे भवनों का निर्माण कराया। किले का समीपस्थ उद्यान भीबनवाया। पनिया अकाल के समय अलाउद्दीन लोदी द्वारा निर्मित कच्चे बांध के बलवन्तसिंहजी ने पक्का कराया। यह बांध जिन दो पहाड़ियों का मिलाता है, उनमें से पश्चिम वाली पहाड़ी पर यह किला बनाया गया है जिसमें तीन इमारतें बनी हुई हैं, किन्तु कुछ भाग अभी इन इमारतों में बनना शेष रह गया । पूर्व की ओर पहाड़ी की तलहटी में एक प्राकृतिक स्त्रोत प्रवाहित है जो सूरजमुखी नाम से प्रसिद्ध है। इसका जल तथा प्राकृतिक सौन्दर्य दूर-दूर तक की जनता को आकर्षित करता था । समीप की जनता द्वारा इसको धार्मिक महत्व प्रदान किया तथा इसको तीर्थ के रूप में जाना जाता रहा है । इस पहाड़ी के ऊपर भर्तृहरिजी की एक गुफा है जो मिथक के अनुसार देहली तक गई है।

महल के समीप ही बलवन्तसिंहजी ने एक सुन्दर उद्यान का निर्माण किया, जिसमें एक भव्य बंगले का निर्माण कराया गया। तिजारे के बाजार की पक्की सड़क भी बलवन्त सिंह ने ही बनवायी। राजा बलवन्तसिंहजी निःसन्तान सन् 1845 में इस संसार से परलोक सिधार गए ।

महाराज बलवन्तसिंहजी सदाचारी एवं धार्मिक विचारों के शासक थे। वे बहुत ही सामान्य जीवन व्यतीत किया करते थे। लोकप्रिय शासक एवं कुशल प्रबन्धकर्ता होने के साथ-साथ उनको जनतो हित सदैव ध्यान रहता था। उनके शासनकाल के 20 वर्षों में ही नगर की बहुत उन्नति हुई ।

महाराजा बलवन्तसिंहजी के उत्तराधिकारी के रूप में कोई भी शेष नहीं रहा अतः सन् 1848 में तिजारा का राज्य पुनः महाराज विनयसिंहजी के अधिकार में चला गया। यहाँ का सम्पूर्ण राजसी वैभव अलवर लाया गया। भवानी तोप तथा इन्द्रविमान तिजारा की सम्पत्ति ही हैं।

महाराजा शिवदानसिंहजी के शासनकाल में तिजारा व टपूकड़ा परगनों का बन्दोबस्त माल हुआ तथा इसी समय अंग्रेज अफसर कर्नल केडल साहब ने अलवरसे तिजारा की सड़क बनवाई। उन्होंनें ही तिजारा में सरकारी स्कल व अस्पताल की स्थापना की।

सन् 1881 में महाराजा मंगलसिंह जी के समय में तिजारा से खैरथल तक सड़क का निर्माण कराया गया।

महाराजा जयसिंहजी के शासनकाल में मेवों ने भूमिकर कम करवाने के लिए आन्दोलन किया। इस आन्दोलन को अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक रूप प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप जयसिंहजी को राज्य से बाहर भेज दिया गया तथा शासन की बागड़ोर अंगेज प्रधानमंत्री ने अपने हाथ में ले ली ।

स्वतंत्रता के कुछ दिन पहले तिजारा में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। अनेक लोगों को मार दिया गया तत्पश्चात् 15 अगस्त सन् 1947 को स्वतंत्रता मिलने पर जनता में हर्ष की लहर दौड़ी तथा सम्पूर्ण देश में स्वतंत्रता जय-जयकार हुई। स्वतन्त्रता के पश्चात् तिजारा का चर्तुमुखी विकास हुआ है। यह है तिजारा नगर का ऐतिहासिक परिद्श्य।

अलवर शहर

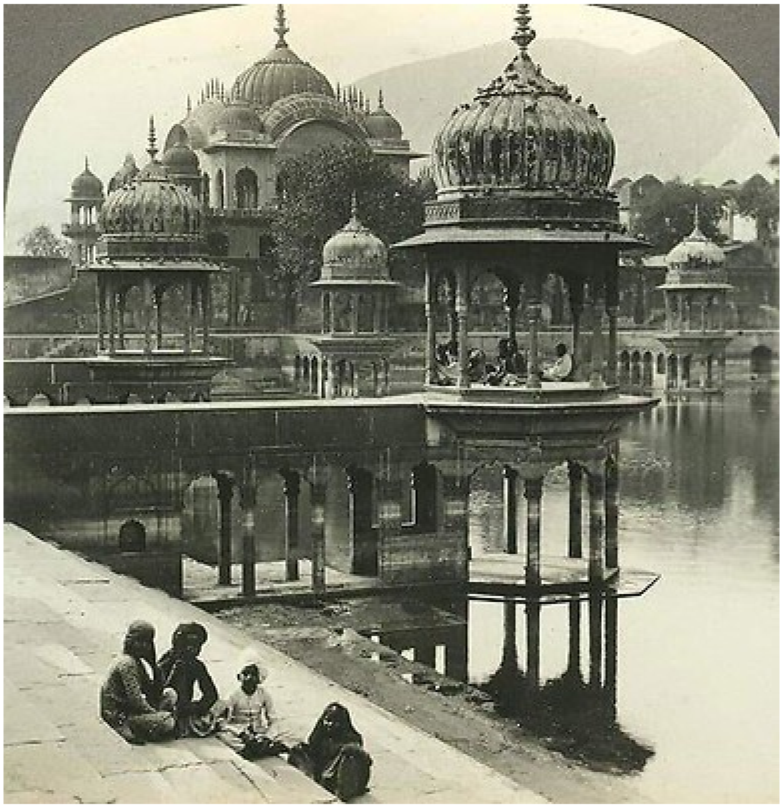

सिटी पैलेस, अलवर के पीछे सागर का एक पुराना दृश्य

उलवर, अलौर और अलवर नाम से बोले जाने वाले शहर के नामकरण का इतिहास भी कम रोचक नहीं है। कितनी ही किंवदंतियाँ, अटकलबाजियाँ और कल्पना ऐसे नामकरण के पीछे छिपी हुई हैं, जिससे इस शहर के नामकरण की समस्या भी अनेक प्राचीन इतिहासकारों के लिये एक पहेली रही है।

अलवर शहर में जुलूस

इतिहासकार मीरहसन 'तवारीख फरिश्ता' में लिखते हैं कि खानजादा अलावलखाँ (सन् 1525) ने अलवर बसाया, किन्तु उसके नाम से तिजारा के पास अलावलपुर नामक उपनगर बसाया जाना प्रसिद्ध है जो खण्डहर रूप अपनी गाथा गाता है । निकुम्भ राजाओं की पीढ़ी में 'आलवा' नामक राजा हुआ था, इसलिए कुछ विद्वानों ने आलवा से अलवर नाम की सार्थकता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। मेजर पाउलट ने भी इन्हीं बातों को गोलमोल ढंग से रखा है। स्वर्गीय कनिंघम ने साल्व जाति से साल्वपुर या हल्वपुर और अलवर की व्यत्पत्ति मानी है।

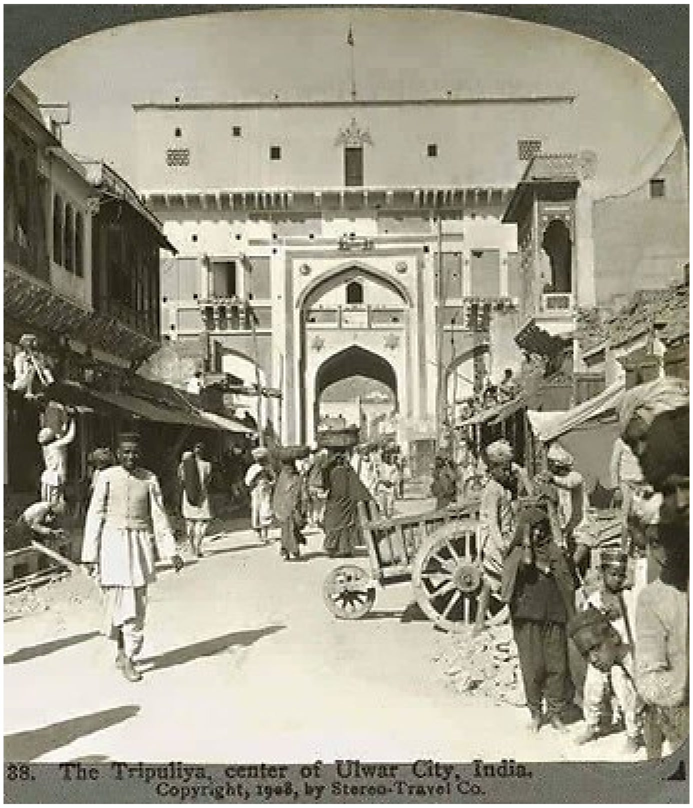
38. The Tripuliya, center of Ulwar City, India.
Copyright, 1908, by Stereo-Travel Co.

अलवर शहर में जगन्नाथ मंदिर के पास एक प्रवेश द्वार

चौहान राजा आल्हणदेव ने अलवर बसाया यह कल्पना भी कम मजेदार नहीं है और सबसे मजेदार तर्क है अलवर के ढाढी रहीम बक्श का, जिसके अनुसार अलवर का नाम अलाउद्दीन खिलजी द्वारा पड़ा। अरावली की पहाड़ियों की तहलटी में बसा अलवर से अरवल के रूप में परिवर्ततन हो गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। अरावली से अलवर के नामरकण की सार्थकता अधिक तर्कसंगतलगती है। साहित्यिक इतिहासकार श्यामलदास ने अपने 'वीर विनोद में अलपुर (मजबूत शहर) से अलवर की व्युत्पत्ति मानी है।

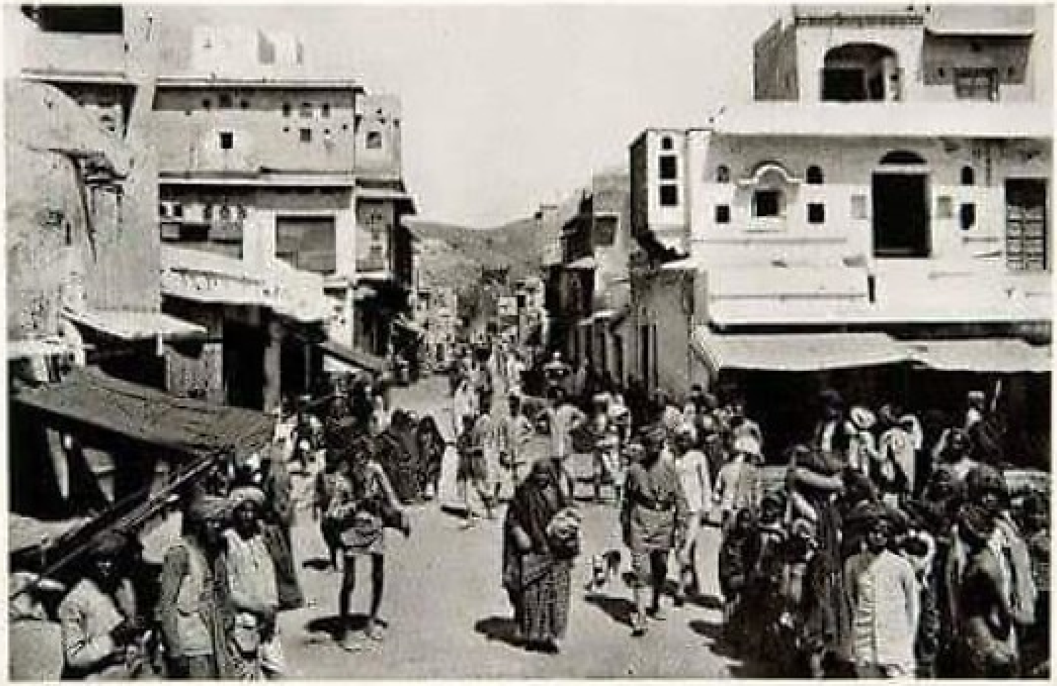

46 Alwar: A Street Scene

अलवर में सर्राफा बाजार (पुराना बाजार)

सभी कल्पनाओं और अटकलबाजियों के विपरीत चांवड़दान के गीत से जो तथ्य प्राप्त हुए हैं वे ऐतिहासिक दृष्टि तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक तर्कसंगत ज्ञात होते हैं। आमेर के राजा कांकिल देव के द्वितीय पुत्र अलघुराय ने बड़गूजरों का विध्वंस कर सं. 1106 में अपने नाम से अलवर शहर बसाया। अलघुराम वीर एवं महत्त्वाकांक्षी राजा थे। उनके उपरान्त उनका पुत्र परम्परा को कायम न रख सका और अलवर का राज्य निकुम्भों के अधिकार में चला गया।

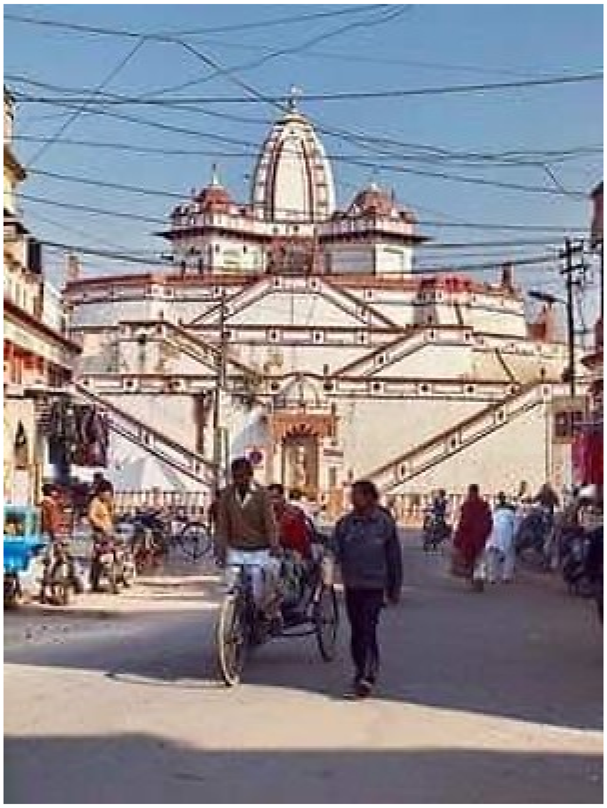

होप सर्कस, अलवर के मुख्य बाजार, का नाम 4 मार्च 1940 को वायसराय के परिवार के नाम पर रखा गया।

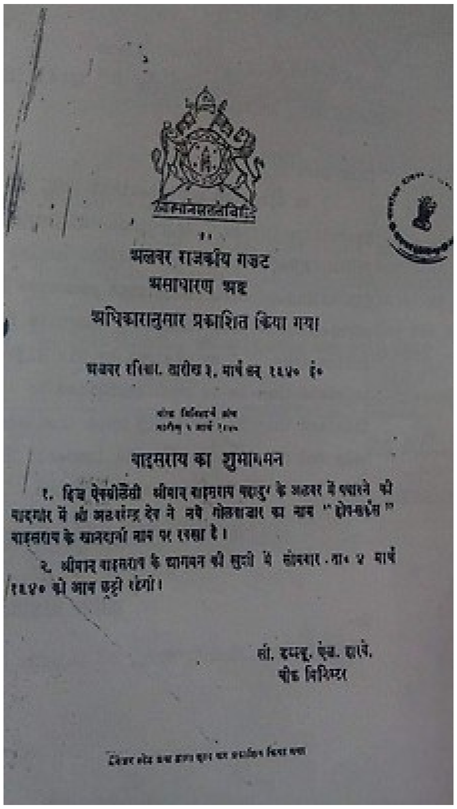

अलवर राजकीय गजट
असाधारण अङ्क
अधिकारानुसार प्रकाशित किया गया।

अलवर रविवा. तारीख ३. मार्च सन् १९४० ई०

वाइसराय का शुभागमन

१. हिज़ ऐक्सीलेंसी श्रीमान् वाइसराय बहादुर के अलवर में पधारने की यादगार में श्री अलवरेन्द्र देव ने नये गोलबाजार का नाम "होप-सर्कस" वाइसराय के खानदानी नाम पर रक्खा है।

२. श्रीमान् वाइसराय के आगमन की खुशी में सोमवार ता० ४ मार्च १९४० को आम छुट्टी रहेगी।

चीफ मिनिस्टर

अलवर राज्य के मुख्यमंत्री द्वारा जारी राज अग्य्या (राजा का आदेश) ने न्यू गोल मार्केट का नामकरण किया।

अलघुराय को कायम न रख सका और अलवर का राज्य निकुम्भों के अधिकार में चला गया। अलघुराय के 'अल' शब्द को लेकर अलपुर और बाद में अलवर नामकरण की सार्थकता समझ में आती है। ग्रामीण लोग अलवर का भी अलोर के रूप में उच्चारण करते हैं तथा मेवल लोग अलूर भी बोलते हैं। जो कुछ भी हो अलवर शब्द को अंग्रेजी प्रभाव में आकर कोई यदि 'अलवर से भी जोड़ने लगे तो कोई ताज्जुब की बात नहीं। इतना निश्चित है कि अलवर शहर की स्थापना 11 वीं शती के आस की तो है ही।

अलवर शहर ने इतिहास के अनेक मोड़ देखें हैं। अलघुराय के समय प्रताप-बंध के ऊपर किले के पीछे रावणदेहरा नाम स्थान पर पुराना शहर था। सामरिक दृष्टि से वह स्थान निश्चय ही अधिक सुरक्षित था। सागर के पास से प्रारम्भ होने वाला शहर कब प्रारम्भ हुआ, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु किले के नीचे से पूर्व की ओर धीरे-धीरे नगर का विस्तार हुआ है। अलवर राज्य की स्थापना से पूर्व अलवर नगर का क्या रूप था इसकी भी केवल कल्पना ही की जा सकती है। किले का इतिहास सबसे पुराना है ।

राणा सांगा और हसनखाँ मेवती को हराकर बाबर अलवर आया और उसने अलवर के दुर्ग में विश्राम किया। दुर्ग की सुदृढ़ता को देख कर अपने छोटे पुत्रहिंदाल को अलवर प्रान्त जागीर में दे दिया। बहरामखां के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना यहाँ के भांजे थे, इसलिए उनका गुम्बद और त्रिपोलिया उसी समय का बना हुआ है। त्रिपोलिया में पहले पूर्व की आरे ही एक द्वार था। तीन द्वार शहर और बाजार के विस्तार के लिए बाद में निकाले गयें। इससे यह ज्ञात होता है कि शहर का यह चौपड़ नुमा बाजार बाद में बना है। खानखाना का गुम्बद यशवन्त स्कूल के पीछे अखैपुरा में सन् 1948-49 तक था, इसके बाद जर्जर होने के कारण गिरा दिया गया।

किले के नीचे से लेकर मालाखेड़ा, दरवाजा, लाल दरवाजा, दिल्ली दरवाजा, आदि के आस-पास से पहले शहर के चारों और पक्का परकोटा था, जो शहर के विस्तार के कारण तोड़ दिया गया। एक समय था जब संध्या होते ही मालखेड़ा दरवाजा, लाल दरवाजा और दिल्ली दरवाजा आदि के विशाल फाटक बंद कर दिए जाते थे ओर संगीन पहरे बिठा दिये जाते थे। जो शहर को सुरक्षित बनाते थे ।

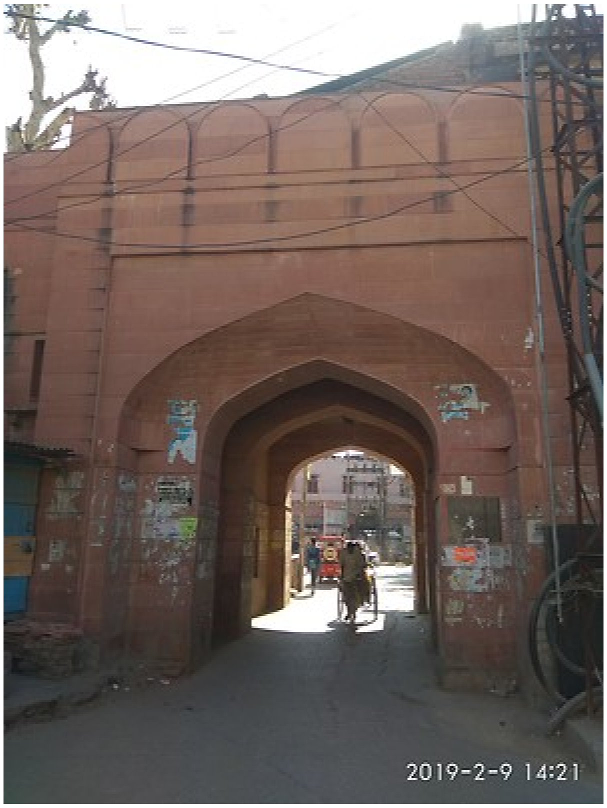

अलवर शहर में 3 द्वार थे: लाल दरवाजा (होप सर्कस के पास), मालाखेड़ा दरवाजा (अशोक सिनेमा के पास) और दिल्ली दरवाजा (विकास पथ के कोने पर)। लाल दरवाजा और मालाखेरा दरवाजा को ध्वस्त कर दिया गया है । केवल दिल्ली दरवाजा शेष है। कुछ साल पहले इसका जीर्णोद्धार हुआ था।

शहर में महल राजा बख्तावर सिंह के समय में बनने प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु उनके निर्माण में पूर्ण सहयोग महाराजा विनय सिंह का रहा। विनयसिंजी ने अलवर शहर की शोभा बढ़ाने के लिए सागर का पुनरूद्धार कर सुन्दर छतरियाँ बनवाई, मूसीरानी की छतरी, सिटी पैलेस, विनयविलास आदि उन्हीं के स्थापत्य प्रेम के उदाहरण हैं। अनेक मन्दिर भी इन्हीं के समय में बने है। राजा शिवदान सिंह के समय में एजेण्ट एम्पी साहब ने एम्पीपुरा बसाया तथा प्रसिद्ध लालड़िग्गी तालाब का निर्माण कराया, जहाँ पूर्व में तैराकी की जिला स्तरीयप्रतियोगिताएं होती थीं परन्तु अब सरकार उपेक्षा के कारण बदहाल है। इन्हीं के समय में मेजर केडल ने शहर की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए लाल दरवाजे के बाहर केडलगंज नाम से अनाज मंडी बनवायी और शहर कोतवाली की नींव डाली।

अलवर नगर के विस्तार एवं विकास में महाराजा जयसिंहजी का बहुत योगदान रहा है। उनकों नये नये भवन बनवाने के शौकीन थे। अलवर के पास विजय मन्दिर पैलेस, ईटाराणा

की पैलेस तथा अन्य शहर में स्थित कोठियों का निर्माण करा कर उन्होनें शहर की का विस्तार किया। अनेक सड़कों का निर्माण एवं मार्गो का हिन्दी नामकरण उनके ही समय की देय है। जैन औषधालय का उद्घाटन सन् 1920 में उन्हीं के हाथों से हुआ। रेलवे स्टेशन के पास अतिथि-आश्रम का निर्माण कराया । जयसिंहजी साहित्यकार एवं विद्वान थे। अनेक पुस्तकें और प्रपत्र प्रकाशित करवाने के लिये सन् 1926 में एक उत्कृष्ट प्रेस की स्थापना अलवर शहर के विकास में एक अविस्मरणीय घटना है। शिवप्रसाद शर्मा ने शर्मा प्रेस का प्रारम्भ कर मुद्रण कला का आरम्भ किया।

महाराजा तेजसिंहजी के समय में सन् 1938 में सी डब्ल्यू हार्वे ने मुख्य मंत्री का कार्यभार सम्भाला। उन्होंने अलवर शहर का नवीनीकरण कर नगर की शोभा को द्विगुण्गित कर दिया। सन् 1940 में लाल दरवाजे के आगे नये गोल बाजार के टीले तोड़कर होप सर्कस का निर्माण उन्हीं के द्वारा कराया गया जिसका नामकरण तत्कालीन वायसराय के खानदारी नाम पर 4 मार्च 1940 को एक भव्य समारोह में किया गया जिसमें वायसराय स्वयं भी उपस्थित रहे थे। बाजार का विस्तार किया गया। सड़कों पर स्थान-स्थान पर एक जैसी ही प्याऊ बनवायी गई जो आज भी उनकी याद में खड़ी है। कॉलेज के क्रीडांगण एवं टैंक का निर्माण करवा कर खेल-कूद की प्रवृति को अलवर में बढ़ावा दिया।नगरों की यह कहानी इतिहास की अनेक घटनाओं से रंगी पड़ी है। मत्स्यपुरी, राजगढद्व तिजारा, अलवर आदि नगर ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् अलवर जिले के उत्थान-पतन में भी इन शहरों का विशेष योग रहा है।

3. प्राचीन अलवर के प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तित्व

इतिहास का दर्द लड़ाईयों, राज्यसिंहासनों एवं राजनैतिक उथल-पुथल से ही नहीं आँका जा सकता वरन् कुछ ऐसे प्रमुख व्यक्ति भी होते हैं, जो अपने व्यक्तित्व के कारण इतिहास ही बदल डालते हैं। अलवर में भी कुछ ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंनें अलवर के निर्माण एवं अलवर के कलात्मक परिवेश के परिवर्तन में अपने जीवन को लगा दिया है। वीर हसनखाँ मेवाती, महाराजा विनयसिंह, महाराजा जयसिंह , अलाबन्दे खाँ आदि का नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

वीर सेनानी हसनखाँ मेवाती

इतिहास-विशेषज्ञों और कुछ इने गिने लोगों को छोड़ कर बहुत कम ही ऐसे लोग होंगे जिन्हें शायद यह मालूम हो कि 400 वर्ष पहले अलवर और मेवात पर ठट्टा के खानजादों का शासन था। फीरोज तुगलक के राजत्व-काल में गढ़, मलिकपुर, चम्पानेर, राजपुर इत्यादि इलाकों के बहुत से यदुवंशी और परमार राजपूतों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। इसी समय के लगभग ठट्ठा के यदुवंशी राजकुमार सांभरपाल ने भी मुस्लिम-धर्म की दीक्षा ली। किंवदन्तियों के अनुसार महफूजखाँ नामक किसी मुसलमान सूबेदार की रूपवती पुत्री के प्रेम पाश में पड़कर उसने धर्म परिवर्तन किया, ऐसा कहा जाता है।

साँभर या सांभरपाल की तीसरी पीढ़ी में लोधीवंश के शासन में अलावलखाँ का जन्म हुआ। हसनखाँ और इब्राहीम लोदी आपस में मोसी के बेटे के भाई थे । 1517 ई. में जब इब्राहीम को दिल्ली का सिंहासन मिला तो उसने हसनखाँ को अलवर और मेवात का इलाका दे दिया और उसे उत्तरी मेवात के वे भाग भी लोटा दिये जिनका अहमदखां लोदी ने जीत कर दिल्ली में मिला लिया था। हसनखाँ ने अपने समय में अलवर और मेवात को समृद्ध बनाने में कोई कसर ना छोड़ी।

हसनखाँ बलवान, साहसी और कर्मठ था। उससे पहले अलवर और मेवात किसी एक निर्दिष्ट रियासत के रूप में नहीं थे। यह सबसे प्रथम शासक था जिसने यहाँ स्थिर शासन का सूत्रपात किया। अलवर के किले का पुरान परकोटा जिसे बडगूजरों ने मिट्टी और पत्थरों से बनवाया था, गिरवा दिया और उसकी नींव पर चूने की पक्की कंगूरेदार दीवारें व बुर्ज बनवाई जो आज तक विद्यमान हैं। इसके अलावा बहुत सी सड़कें, बाग मकबरे व सरायें भी बनवायीं जिनके अवशेष टपूकड़ा, तावडू, फीरोजपुर, भौंडसी, तिजारा, अलवर तथा ढढ़ीकर इत्यादि में अब भी मिलते हैं।

वीर हसन खाँ मेवाती पेनो

अलवर शहर में हसन खां मेवाती की प्रतिमा

हसनखाँ विद्या-प्रेमी थे । उनके संरक्षण में बहुत से विद्वानों का पालन-पोषण होता था। उन्हें शायरी का भी शौक था और अपने समकालीन कवियों में उसे उस्ताद की पदवी हासिल थी। इन सब के अतिरिक्त स्वदेश प्रेम उसमें कूट-कूट कर भरा था। इस्लाम धर्मावलम्बी होते हुए भी, प्रण एवं प्रतिष्ठा के लिये स्वधर्मी के साथ युद्ध करने में कभी नहीं चूकता था। पानीपत के विख्यात युद्ध में इब्राहीम की हार से लोधीवंश का भाग्य सूर्य अस्त हो गया। मुगलों की वीरता के अन्ध आवेग के सम्मुख खानजादों की परिसीमित सेना न ठहर सकी।

राजा हसनखाँ अपने चुने हुए सरदारों के साथ जंगलों में भटकता रहा। 111 साल तक बाबर की अक्लान्त सेना उसे मेवात के एक सिरे से दूसरे सिरे तक खदेड़ती रही, किन्तु मेवातियों की सहानुभूति और अपने अदम्य उत्साह से उसने मुगलों को चैन न लेने दिया। इसी बीच में उसे मेवाड़ के राणा सांगा का निमंत्रण मिला जो बिखरे हुए राजपूतों की एक महती सेना इकट्ठी कर चुका था और वयाना के विस्तीर्ण मैदान की ओर बाबर से लोहा लेने के लिए बढ़ रहा था। उधर बाबर ने भी अपने प्रतिनिधि मुल्ला तुर्कअली और नजफबेग को सुलह की सूचना लेकर भेजा जिसमें लिखा था कि वह हसनखाँ को मेवात का स्वेच्छाचारी शाह बना देगायदि एक बार वह बाबर को आकर ताजीम दे। भेंट स्वरूप अशर्फियों के कई

थाल, दास-दासी और नीलम के मूठ की एक तलवार भी भेजी गई थी। बाबर से मित्रता के प्रदर्शन में उसके लड़के को भी रिहा कर दिया, जिसे पानीपत के मैदान में उसने बन्दी बना लिया था। वास्तव में उसे राणा सांगा से उतना अधिक भय नहीं था जितना हसनखाँ से, क्योंकि मेवात देहली के पड़ोस में थी और पड़ोसी को ही दुश्मन बना लेना राजनैतिक नियमों के विरूद्ध था ।

देहली और आगरा के अतिरिक्त उसका शासन-सूत्र अन्य प्रान्तों में अत्यन्त शिथिल था, फलतः वस्तुस्थिति ने उसे मजबूर कर दिया कि राणा सांगा को हराने से पहले वह हसनखां को अपना मित्र बना ले।

स्वाभिमानी हसनखाँ मेवाती ने बाबर का अतिथ्य स्वदेश प्रेम के लिये ठुकरा दिया। खानदानी अधिकारों व राणा सांगा की मित्रता के सामने धन-वैभव की क्या हस्ती थी? उसने इस यज्ञ में अपने पुत्र की आहुति तक देने का दृढ़ निश्चत कर लिया था, लेकिन इससे पूर्व की उसका प्रत्युत्तर देहली पहुँचे, बाबर पहले ही उसे लड़के को स्वतन्त्र कर चुका था, जिसका पश्चाताप उसने ’तुजुक’ में भी कई स्थानों पर किया है। राणा सांगा को वह वचन दे चुका था कि वह उसी वंश की ओर से आतताइयों से युद्ध करेगा जिसमें वह पैदा हुआ हैं।

हसनखाँ राणा सांगा से बायाना में सेना सहित जा मिला । 28-29 फरवरी सन् 1527 को फतहपुर सीकरी के उत्तरी अंचल में घमासान युद्ध हुआ। मुगल सरदारों की हिम्मत टूट गई। शेख जमाली और मुल्ला तुर्कअली की सलाह से उसने अजमेर की ओर भाग जाने का निश्चय किया ओर यदि राणाहसन के आदेशानुसार उसी समय मुगलों का पीछा करता तो संभवतः मुगलाई वंश का नाम लेवा भारत में कोई नहीं रहता और यहाँ के इतिहास का घटनाक्रम ही बदल जाता, लेकिन सांगा की फौजें वापिस अपनी छावनी में लौट कर आमोद-’प्रमोद में पड़ी गयीं और बाबर ने इस सुयोग से लाभ उठाया। उसे सेना को संगठित करने कामौका मिला गया। 23 दिन के अनन्तर उसने फिर मेवाड़ और मेवात पर चढ़ाई की ओर फतेहपुरी के मैदान में उसे हराया।

अन्तिम युद्ध के पूर्व हसनखाँ को उसके गुरू सैयद जमाल अहमद बहादुरपुरी ने बाबर से लड़ने के लिए मना किया था। सैयद साहब पर उसका बहुत विश्वास था और बचपन से युवा होने तक भी उसने कभी उसकी आज्ञा नहीं टाली थी, किन्तु वीरत्व के गर्व के सामने उनकी भी कुछ न चली। हसन अलवर से विदा होते समय कहकर गया था कि यसा तो वह मेवात के लिये स्वतन्त्रात ही लायेगा या उसकी लाश ही शहर में लौटेगी। यही हुआ हसन वीरों की तरह लड़ता हुआ मारा गया। जमालखाँ, फतहजंग और हुसैनखां जो उसके निकट सम्बन्धी थे उसकी लाश को अलवर ले आये ओर नगर के उत्तरी पार्श्व में उन्होंने उसे दफना कर एक

छतरी बनवादी जो आज भी हसनकी के नाम से प्रख्यात है। हसनखाँ की मृत्यु के सम्बन्ध में ऐतिहासकों के भिन्न-भिन्न अनुमान हैं।

मौलवी नजमुल गनी रामपुरी, जकाउल्ला देहलवी, क0 जैम्स टॉड तथा अन्य विद्वानों की राय में उसकी मृत्यु समरक्षेत्र में बंदूक के आघात से हुई। हैकेट साहब अपने गजेटियर में उसकी मृत्यु का कारण पारस्परिक वैमनस्य बतलाते हैं। बाबर ने तुजुक में लिखा है कि ललाट पर तीर लगने से उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

अधिक विश्वसनीय यह बात जंचती है कि आजादी का वह फरिश्ता समर-क्षेत्र में ही वीरगति को प्राप्त हुआ। सच बात तो यह है कि देश की स्वतन्त्रता के लिए मेवाड़ी और मेवाती दोनों ही शहीद हो गये। देश की स्वतन्त्रता के लिए दोनों की तलवारें एक साथ उठी थी।

धु्रवपद सम्राट अलाबन्दे खाँ

अलवर राज्य के महाराजा जयसिंह विद्वानों, कलाकारों एवं कलावंतो को अपने दरबार में स्थान देकर आदर देते थे। उनके समय के संगीतकारों में धु्रवपदसम्राट अलाबन्देखाँ साहब का नाम अविस्मरणीय है। बादशाह अकबर के दरबार में जो स्थान तानसेन का था वही स्थान महाराजा जयसिंह के दरबार में खाँ साहब का था। उनके धु्रवपद अंग को सुनकर दरबारी आत्मविभोर हो उठते थे। महाराजा उनकी कला के पारखी थे और उनकी उत्कृष्ट कला के लिये उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। खाँ साहब का स्थान अलवर के ’’गुनीजन खाने’’ में तो सर्वोच्च था ही भारत के संगीकारों के बीच भी उनका ऊँचाा स्थान था। वे अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित होते थे और अपने अलाप और धु्रवपद का प्रदर्शन कर श्रोताश्रों के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते थे। उनकी ख्याती बहुत दूर-दरू तक फैली हुई थी। अवलर में जामामस्जिद वाली गली ;वर्तमान में नुकती का कुआं द्ध में उनका निवास स्थान था।

अलाबंदेखाँ साहब का घराना जिसे स्वामी हरिदासजी का घराना माना जाता है ओर जिसमें बहरामखाँ जैसे उत्कृष्ट संगीतकार पैदा हुए, भारतवर्ष में अपना प्रमुख स्थान रखता है। धु्रवपद गायकी के चार घरानों में से यह डागरबानी का घराना ही अब शेष बचा है। खाँ साहब डागरवानी के एक श्रेष्ट कलाकार थे। उन्होंनं अपने पूरे व्यक्तित्व को संगीत साधना में लगा दिया था। वे संगीत साधना को योग साधना से कम नहीं मानते थे, इसीलिये उनका आचार अत्यन्त पवित्र था।

वे पूर्ण संयम से रहते थे और नियमित रूप से ईश्वर की आराधना करते थे। चरित्र के ऐसे दोष जो स्वाभाविक रूप से कलाकारों में पैदा हो जाते हैं उनमें नहीं थे। वे अपने शिष्यों से कहा करते थे कि ईश्वर संगीतकार उसे ही बनाता है जिसके पूर्व जन्म के कार्य अत्यन्त पवित्र होते हैं। उनका रहन-सहन एवं चिन्तन सभी सूफियाना ढंग का था। वे स्वभाव के बड़े विनम्र थे ओर विशेष रूपसे शांत और करूण भाव उनके जीवन एवं कला में विद्यमान थे। अपनी साधना के इतने पक्के थे कि नित्य चार बजे उठकर संगीत साधना में लग जाते थे।

संगीत सम्मेलनों में अलाबन्देखाँ प्रायः अपने बड़े भाई जाकिरूद्दीनखाँ साहब के साथ गाते थे। जाकिरूद्दीन खाँ महाराणा उदयपुर केदरबारी गायक थे। जब दोनों भाई बैठ कर गाते थे तो एक बार तो अपनी कला की गहनता और सुन्दरता के कारण श्रोताओं को मंत्रगुग्ध कर लेते थे।

जाकिरूद्दीन खाँ साहब गमक और हुदक अंग में अपनी विशेषता रखते थे। अलाबन्दे खाँ साहब लहक एवं अन्य अंगो सिद्धहस्त कलाकार थे। खाँ साहब की गायकी में भावपक्ष बहुत सबल था। वे श्रोताओं को प्रसन्न करने के लिये तो गाते ही थे उससे अधिक भक्ति, वीर एवं श्रृंगार के धु्रवपद और धमार को उनके भाव में डूबकर उनके रस को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करके गाते थे। धु्रवपद की गायकी को कभी उन्होंने एक शैलीमात्र नहीं समझ कर ईश्वर की साधना का एक अंग माना। उनके घराने की वही परम्परा आज चक चली आ रही हैं धु्रवपद गायकी में डागर घराना ही एक घराना है जो भाव और रस को उतना ही महत्त्व देता है जितना शैली और पद्धति को।

अलाबंदे खाँ ने संगीत की शिक्षा अपने पुत्र नसीरूद्दीनखाँ, रहीमुद्दीखाँ, इमामुद्दीन खाँ और हुसेनुद्दीन खाँ (तानसेन पांडे) को दी। नसीरूद्दीन खाँ सबसे बड़े बेटे होने के कारण अपने पिता से पूर्ण शिक्षा ले पाये। वे भी एक महान् कलाकार हुए और उनकी कला से प्रभावित होकर इंदौर राज्य के महाराजा तुकोजी राव ने उन्हें अपने यहाँ पूरा सम्मान देकर दरबारी गायक के रूप में रखा।

अलाबंदे खाँ हुसेनुद्दी खाँ, से सन् 1936 में स्वर्गवास के बाद उनके सबसे छोटे पुत्र जो बाद में तानसेन पांडे से विख्यात हुए अलवर के दरबारी गायक बने। वे स्वर और लय में अत्यधिक कुशल थे। वे अपने जीवन में कुछ समय अलवर दरबार में रहे और उन्होंनं अपने पिता अल्लाबंदेखाँ साहब की संगीत परम्परा को पूरी तरह जीवित रखा। श्रोताओं के हृदय में उनके लिये वही सम्मान था जो उनके पिता के लिये। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् जब अलवर महाराजा का शासन समाप्त हो गया तो तानसेन कलकत्ता चले गये और वहाँ रवीन्द्र भारती में भारतीय संगीत के प्राध्यापक के रूप में काम करने लगे।

नसरीरूद्दीन खाँ साहब का स्वर्गवास सन् 1946 में ही हो चुका था, लेकिनउनके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र नसीर मुइनुद्दीन खाँ और नसीर अमीनुद्दी खाँ , डागर बंधु के नाम से धु्रवपद गायकी के लिये पूरे भारतवर्ष में विख्यात हुए। नसीर मुइनुद्दीन खाँ साहब के आकस्मिक स्वर्गवास के पश्चात् उनके छोटे भाई नसीन अमुनुद्दीनखाँ नसीर जहीरूदीनखां और नसीर फैय्याजुद्दीखाँ अब ध्रुवपद गायिकी के प्रतिनिधि कलाकार थे। अलाबंदे खां के दूसरे पुत्र रहीमुद्दीन खाँ को भारत सरकार ने पदमश्री की उपाधी से विभूषित किया । अल्लाबंदखाँ साहब का घराना आज धु्रवपद धमार की गायकी में भारतवर्ष में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

अलवर की ऐतिहासिक धरोहरें

बाला किला

अलवर के मस्तक पर दोनों पहाड़ियों के बीच स्थित किले कभी युद्ध के नक्कारों की गड़गड़ाहट पहाड़ों में गूँजती हुई किले की दीवारों की धर्राहट देखी है ।

कितने ही वीर राजाओं ने इस दुर्ग पर अपना अधिकार किया और किले केगर्त में विलीन हो गये, परन्तु यह दुर्ग अभी तक मस्तक ऊँचा किये निर्भीकता से बीते हुये युग की दास्तान सुनाता रहा हैं। इसमें कितने ही युद्धों, कितने ही राज्यों और कितनी ही विलास-वैभव की गाथाएँ पत्थरों के नीचे दफ़न हुई पड़ी हैं।

प्राचीन प्रवेश द्वार बाला किला, अलवर

सम्वत् 1106 में आमेर नरेश कांकिल के द्वितीय पुत्र अलघुराय ने इस पहाड़ पर छोटी सी गढ़ी बनवाकर उसे नीचे एक नगर बसाया जो रावणदेहरा नाम से विख्यात हैं। इसी नगर का नाम अलपुर रखा गया। इसके बाद उनके पुत्र सागरजी से निकुम्भ क्षत्रियों ने यह दुर्ग

छीन लिया और अधिक विस्तार से इसका निर्माण कराया जिसके अवशेष दुर्ग पर अब भी दिखाई देते हैं। निकुम्भों की पूज्य देवी चतुर्भुज आज भी दुर्ग पर स्थित हैं। कहा जाता है कि ये लोग अपनी देवी के सम्मुख नर-बलि दिया करते थे। इस नर हत्या से प्रजा बड़ी दुखी हुईं। एक डौमणी के पुत्र की बलि की बारी आई तो उसकी रक्षा के लिये वह तत्कालीन अलावलखाँ खानजादा के पास गई और कहा कि निकुम्भ बड़े हिंसक हैं, इनका नाश होना चाहिए। दुर्ग की बुर्ज के दांतो से मिट्टी डालकर, डौमीणी ने तय संकेत किया और अलावल खाँ ने ऐसे शुभ अवसर पर, जबकि निकुम्भ मांस-मंदिरा में धुत्त थे, दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। निकुम्भ मारे गये और दुर्ग पर अलावलखाँ का अधिकार हो गया। उसने विशाल द्वार और परकोटा बनवाया। सन् 1252 में अलावल खाँ इब्राहिम लोदी से युद्ध में मारा गया।

बाला किला, अलवर का एक आंतरिक दृश्य

’तवारीख फरिश्ता’ में लिखा हुआ कि सन् 1251 में हमराज राजपूत ने अलवर के पर्वतों से निकलकर पृथ्वीराज के पुत्र गोला का रणथम्भोर की ओर भगा दिया। इससे प्रमाणित होता है कि अलावलखाँ की मृत्यु से 331 वर्ष पूर्व ही अलवर बस चुका था।अलवर दुर्ग पर ही 3 अप्रैल सन् 1525 में मुगल सम्राट बाबर यहाँ एक रात ठहरा था जिसके चलते समय वह अपने सामंत वैन सुल्तान को यहाँ छोड़ गया था। इसने दुर्ग पर एक बुर्ज भी बनवाई

जिसपर नाम आदि खुदे हुये हैं। बाद में बाबर ने अपने बेटे हिन्दाल को अलवर जागीर में दे दिया, अतः अलवर राज्य पर मुगलों का भी शासन रहा यह इतिहास सिद्ध है।

बाला किला में भगवान राम और सीता मंदिर जहां अलवर कें महाराजा पूजा करते थे।

सलीमशाह बादशाह सूर के समय में इस दुर्ग के अध्यक्ष चांदकाजी ने बादशाह के नाम पर सलीम सागर बनवाया था । भरतपुर के राजा सूरजमल ने भी इस दुर्ग में राज-भवन बनवाकर एक कुण्ड बनवाया जो सूर्य-कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। सन् 1832 में अलवर के महाराजा प्रतापसिंह ने इस दुर्ग पर अधिकार लिया। उन्होंनं अपने इष्टदेव सीतारामजी का मन्दिर बनवाया। प्रतापेश्वर शिवजी की मूर्ति अब भी एक छतरी में विद्यमान है। द्वितीय शासन बख्तावरसिंह ने दुर्ग में एक प्रताप-स्मारक बनवाया।

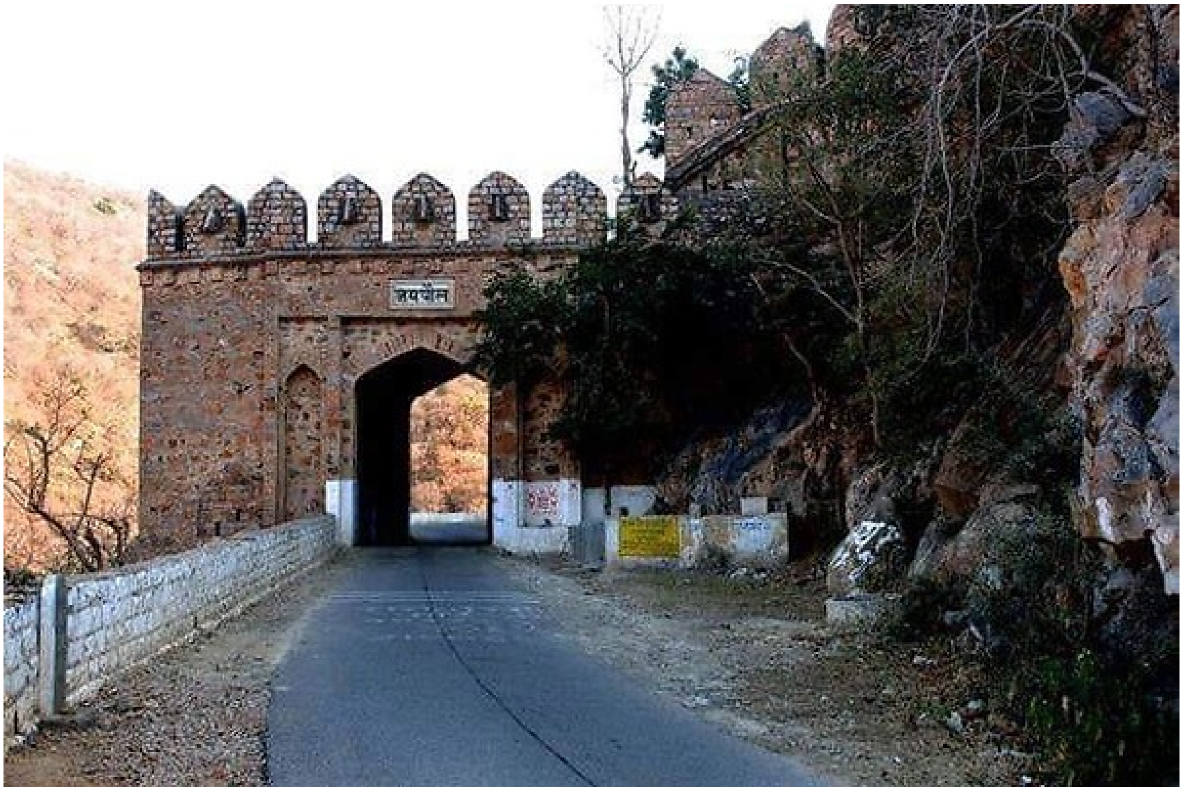

जय पोल (अलवर के महाराज जय सिंह पर नामांकित) और बाला क्विला, अलवर का प्रवेश द्वार

शिल्प शास्त्रानुसार अलवर का दुर्ग पहाड़ के मस्तक पर होने के कारण यदियानि शिल्प जाति का है। इसकी ऊँचाई, समुद्र से 1930 फुट और समतल भूमि से 1000 फुट है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण 3 मील, चौड़ाई पूर्व से पश्चिम 1 मील परिधि 6 मील है। इसमें 15 बड़ी और 52 छोटी बुर्जे हैं, जिसमें 444 छिद्र गोली के लक्ष्य के लिए बने हुये हैं समस्त कंगूरे 3359 हैं और प्रत्येक कंगूरे में दो-दो छेद हैं, जिनमें से एक बार में 6718 गोली चलाई जा सकती थीं।

किले के अंदर का दृश्य

दुर्ग की रक्षा के लिए बाहर चारों और 8 बुर्जे हैं। एक बुर्ज का नाम काबुल खुर्द है । दूसरी का नाम नौ गजा बुर्ज है। राजा मंगलसिंह ने दुर्ग निरीक्षण के लिए बुर्ज बनवाई जिसमें उस समय एक लम्बे डील-डौल वाले पुरूष की ठठरी, वस्त्र से ढँकी हुई प्राप्त हुई। सम्भव है उस पुरूष के विशालकाय होने के कारण ही बुर्ज का नाम नौ गजा बुर्ज रहा हो। तीसरी बुर्ज का नाम हवा बंगला है जो राजा शिवदान सिंह ने वायु सेवन के लिए बनवाई थी। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए पाँच पोल हैं। पश्चिम में चांदपोल है जो निकुम्भ क्षत्रीय राजा चांद की बनवाई प्रतीतहोती है, उसी के नाम पर पोल का नाम चांदपोल है। उन्हीं दिनों यही किले का मुख्य द्वार था । पूर्व में सूरजपोल है। इस पोल का सूर्यमुखी होने के कारण नाम सूर्यपोल है। सूरजमल से भी इस नाम अनुमान करते हैं। दक्षिण की ओर लक्ष्मण पोल हैं । जय पोल महाराजा जयसिंह के नाम पर रखा जाना सम्भावित है।

किले के अंदर का एक और दृश्य

कृष्ण पोल दुर्ग के नीचे का पूर्वी द्वार है और कृष्ण कुण्ड के निकट होने के कारण कृष्ण पोल प्रसिद्ध है। अन्धेरी दरवाजा उत्तर की ओर जहाँ दो पहाड़ियाँ हैं मिला है और सूर्य का प्रकाश न पहुँचने के कारण अन्धेरा रहता था।

सीलीसेड़

अलवर के खुश्क वातावरण में किसी झील का होना एक सुखद आश्चर्य से कम नहीं है। अरावली के तीन तरफ से घिरा यह स्थल बरबस ही देशी-विदेशी सैलानियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता हैं ।

महाराजा विनयसिंह की रानी शीला को शहर का शोर-शराबा पसन्द नहीं करती थी, इसलिए विनयसिंहजी ने शहर से बिल्कुल दूर अपनी रानी के लिए यही उपर्युक्त स्थान समझा और यहाँ पर कोठी का निर्माण कराया जिसके कारण इसका नाम सिलीसेड़ पड़ गया। राजस्थान सरकार ने इस कोठी को राजस्थान होटल के रूप में परिवर्तित कर दिया है तब भी यह अपनी पुरानी कहानी कहने में पूर्ण सक्षम हैं। महारानी शीला के नाम पर ही इस स्थान का नाम सीलीसेड़ होने का भी मिथक प्रचलन में है । इस स्थान का धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। पास में ही शीतला माता का मन्दिर है। प्रतिवर्ष वैसाख कृष्ण अष्टमी के दिन यहाँ पर मेला लगता है। ऐसा भी कहा जाता है कि शीतला माता के नाम पर ही इस स्थान का नामकरण सीलीसेड़ पड़ा होगा।इस स्थल का समग्र सौन्दर्य यहां की विशाल नीली झील में सिमट कर आ गया है। वर्षा ऋतु में यह झील जल-विहार के लिए विशेष आनन्ददायी होती हैं।

लोग यहाँ पर आकर वन भोजन का आनन्द उठाते है। झील के बीच में बना हुआ एक लाइट हाउस इस झील के सुंदरता में चार चांद लगा देता है। अनेक हिन्दी फिल्मों के निर्माण सीलीसेड़ होटल एवं झील के शूटिंग की जाती रही है । वर्तमान में राजस्थान का सरकारी होटल बना हुआ है ।

तालवृक्ष

तालवृक्ष अलवर का ऐतिहासक, तीर्थ, एवं प्राकृतिक दृष्टि से अत्यधिक वैभवपूर्ण स्थान हैं। जयपुर की ओर नारायणपुर मार्ग पर पहाड़ों की गोद में बसा हुआ है । सरिस्का के राष्ट्रीय उघान घोषित होने के कारण सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर अलवर से जयपुर जाने के तालवृक्ष-नारायणपुर मार्ग को विकसित भी किया गया है ।

तालवृक्ष अपने हृ दय में पाण्डवकाल के उस महान् ऋर्षि माण्डव्य की स्मृति संजोय हुए है जिन्होंनं अपने जीवन के अन्तिम क्षण यहाँ तप करके बिताये थे। यहाँ के पवर्तत को नेतनाग पर्वत और नदी को फल्गु नदी कहा जाता हैं।

संस्कृत ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि ऋर्षि के भक्त मनोहर गिरी गोसाई को सं. 1657 में बलभद्रसिंह शेखावत ने 101 बीघा जमीन दान में दी गई थी।

यहाँ का प्राकृति सौन्दर्य मानों यहाँ के ठण्डे और गर्म पानी के कुण्डों में ही समा गया हो। कच्चे कुण्ड का जिर्णोद्धार महाराजा रामसिंह ने करवाया था। इन्हीं कुण्डों के ऊपर गंगा का मन्दिर है जिसकी प्रतिष्ठा बाबा पूर्णदास ने करवायी थी।

थोड़े समय बाद यहाँ पर एक चमत्कारपूर्ण घटना घटी। तालवृक्ष के खेतों में एक भव्य मूर्ति मिली जो बराह भगवान की है अतीत के साये में पड़ी यह प्रतिमा नमालूम कब से घरती की कोख में पड़ी थी, जो आज सदियों के बाद जागी है। इस मूर्ति को वराह मन्दिर में रखा गया है। अनेक कुण्डों का निर्माण एवं मन्दिरों के जीर्णोद्वार में तत्काली तहसीलदार श्यामसिंह का विशेष योगदान रहा है।

भर्तृहरि की समाधि

अरावली के पहाड़ी के चारों ओर घिरी भर्तृहरि की समाधि अलवर से 32 किलोमीटर जयपुर रोड पर है। यह स्थान धार्मिक एवं ऐतिहासिक अधिक है। हरे-हरे वृक्ष और उन पर पड़ी सफेद बादलों की श्वेत चादर उस महान् योगी और महाराज भर्तृहरि की याद दिलाती है, जिनके जीवन में विरह और मिलन, योग और भोग का अद्भुत समागम था। यह स्थान भी अपने हृदय में उज्जैन के राजा और रानी की मौन व्यथा छिपाये हुये है। महाराजा भर्तृहरि की न्याय-प्रियता जगत प्रसिद्ध थी। अपनी रानी पिंगला को वे असीम प्रेम करते थे। अचानक उनकी रानी किसी और से प्यार करने लगी।

जिससे उनकी प्रेम से ओतप्रोत जीवन को इस घटना ने उन्हे साधु बनने के लिए विवश कर दिया। महाराजा राजपाट छोड़ कर दर-दर भिक्षा मांगने लगे। तपस्या के अन्तिम दिनों में उन्होंने उज्जैन से चल कर अलवर आकर अरावली की पर्वत श्रेणियों ; वर्तमान में तिजारा द्ध में तपस्या की एवं जयपुर मार्ग पर वर्तमान सिल पर समाधि लगाई और अपने मिट्टी के शरीर को धरती की मिट्टी में मिला दिया। उन्हीं की समाधि पर छतरी बनाई गई है जिस पर रात और दिन अनवरत घी की ज्योति जलती रहती हैं। आस पास के क्षेत्र में कई मन्दिरों का निर्माण हो गया है ।

यहाँ का एक-एक कण भर्तृहरिजी के पुनीत उपदेशों से पवित्र है। यह स्थान अब धार्मिक स्थल के रूप में पूजनीय है। यहाँ पर भादवा और बैशाख में मेला लगता है। समाधि के ठीक सामने ही एक भव्य शिवालय है, जिस पर भक्तजन श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हैं। यहाँ का प्राकृतिक-सौन्दय भी अपूर्व है। पास ही समाधि के पास पहाड़ों से आता हुआ पानीछल-छल करता गिरता है, जिसमें धार्मिक तीर्थयात्री एवं सैलानी स्थान का आनन्द लेते हैं।

सरिस्का

सरिस्का, अलवर से जयपुर के मार्ग में पड़ता है। सरिस्का महल ;अब होटल सरिस्का पैलेस द्ध धूप में स्वर्ण-कलश में अपना श्वेत सुख धोती हुई सुन्दर सी प्रतीत होती हैं। यह खड़ी हुई अटल कोठी महाराजा जयसिंहजी के वैभवपूर्ण दिनों की कहानी चुपचाप हमारे कानों में कह रही है। अरावली की पर्वत श्रेणियों की तलहटी में बनी यह कोठी, मां के गोद में खेलती हुई शिशु की भांति लगती है।

यह स्थान पहले बिल्कुल निर्जन था और यहाँ पर वास था तो केवल हिंसक पशु जानवरों का जिनकी चिंघाड, किलकार, और घड़ूक कानों को फोड़ डालती थी। ऐसे दृश्य यदि आज अधिक नहीं दीखते तो क्यो हैं, थोड़े तो दीखते ही हैं? महाराजा जयसिंह ने इसे आखेट स्थल के रूप में चुना था। उन्हीं के समय में उनके साथ ड्यक ऑफ एडिबनरा शिकार के लिए आए। तभी उन्होंनं इस भव्य कोठी का निर्माण कराया था। अब सरकार ने इसकी बिल्कुल काया पलट कर दी है। सरिस्का की कोठी को दिखाने के लिए हमें वहाँ पर ’गाईड’ भी मिलते हैं। इस कोठी में महाराजा जयसिंह के काल की बहुत सी सुन्दर वस्तुएँ रखी हुई हैं जो आज तक चुपचाप अपनी करूणा कथा कहने के लिए जीवित हैं। कोठी के सामने ही अब ’पर्यटक होटल’ खोल दिया है जहां सैलानी अपनी रात चैन से बिताते हैं।

इस स्थल को अब पशु-पक्षी बिहार के रूप में परिचित कर दिया गया हैं बहुत से पशु-पक्षी देशी-विदेशियों के मान को हर लेते हैं वे हैं हरिण, सांमर, चीतल शेर। पास में ही काली घाटी के दृश्यों को देखकर दर्शकगण आत्म विभोर हो उठते हैं।बल खाती हुई सर्पाकार सड़क पर वृक्षों के गहरे साये इस घाटी की सुन्दरता में चार चाँद लगा देते हैं।

पाण्डुपोल

पाण्डुपोल अलवर जिले के ऐतिहासिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक स्थलों में सर्वोत्तम स्थान है। यह स्थान अलवर से दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यहां पर प्रकृति नर्तकी हरित साड़ी, झरनों की पायल बांध, झनझनाती हुई , थिरकती हुई आकाश लोक से पहाड़ों की गोद में उतरती है। नीले वितान के नीचे प्रकृति जब अपनी भिन्न-भिन्न भाव भंगिमा में नृत्य करती है तो दर्शक-गण मदहोश हो जाते हैं और एके ऐसे नशें का आलम छाता है कि पता नहीं रहता है वे कहाँ है और कहाँ जा रहे हैं। अलवर से तरूड़ा गांव तक रास्ता सुगम है किन्तु इससे आगे चलते-चलते रास्ता अधिक दुर्गम ओर तंग होता चला जाता है। कहीं पर बहुत अधिक ऊँचाई तो कहीं पर नयनाभिराम ढलान, आगे पीछे चारों तरफ पहाड़ नैर्सगिक खूबसूरती की चार दीवारी सी प्रतीत होती है।

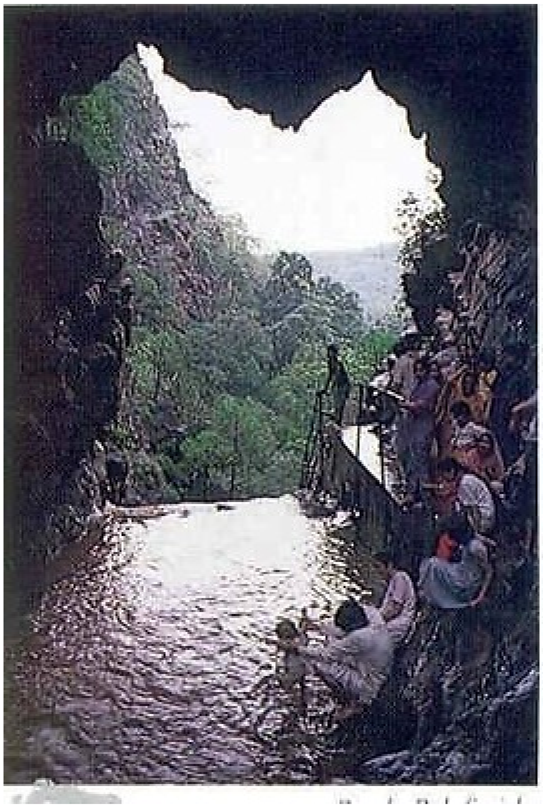

" पोल' (टूटी हुई पहाड़ी) का एक दृश्य पांडव भाई भीम द्वारा तोड़ा गया

इस दुरूह राह को पार करते ही हनुमानजी का विशाल श्वेत मन्दिर दृष्टिगोचर होता है। कितनी निस्पृहता एवं शान्ति है यहाँ के जन-जीवन में। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बाबत निर्भयदासजी ने की थी जिनकी समाधि यहीं पर एक ओर बनी हुई है। भादों के महीने में यहाँ पर एक मेला लगता है जिसमें दूर-दूर से यात्रा आते हैं। मन्दिर से आगे चलते-चलते एक मील की दूरी पर वह स्थान आता है जिसे देखने के लिए हम सब लालायित रहते हैं। यह स्थान पाण्डुपोल है। यहाँ तक अब पक्की सड़क बन चुकी है। सड़क से तीस पैंतीस फुट ऊँचा पहाड़ कटा हुआ अधर रखा हुआ है। इसकी पीछे भी एक ऐतिहासिक कहानी है।

पाण्डुओं ने अपना अज्ञातवास यहीं पर किया था किन्तु फिर भी जब कौरवों की सेनाओं ने उन्हें यहाँ पर घेर लिया तब भीम ने पहाड़ में गदा मार कर अपना मार्ग प्रश्स्त किया था। इस कथा में कितनी सत्यता है इसका कोई लिखित प्रमाण तो मिलता नहीं ऐसा केवल अनुमान किया जाता है। वैज्ञानिकों और पुरातत्व-वेत्ताओं का विचार है कि यह पहाड़ धीरे-धीरे अपने आप पानी के तेज बहाव के कारण कट गया होगा। यहां पर ही विशालकाय पर्वतों से तेज पानी के झरने बहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रकृति ने अपने नृत्य के साथ-साथ एक अलौलिक राग छेड़ दिया है।

नारायणीजी

अलवर जिले की राजगढ़ तहसील में बरवा डूँगरी की तलहटी में यह अत्यधिक रमणीय और सुरम्य स्थान है। यहां पर नाईयों की कुल देवी नारायणी माता का मन्दिर है। इसके ठीक सामने ही संगमरमर का एक छोटा सा कुण्ड है। प्रति वर्ष वैसाख शुक्ल एकादशी को यहां पर मेला लगता है जिसमें बम्बई, मद्रास, लंका, कलकत्ता तक के नाई नारायणी माता से प्रसाद पाने के लिए एकत्रित होते हैं।यह स्थान प्राकृतिक दृष्टि से बहुत ही सुन्दर हैं। मन्दिर के चारों और आम, केला, कचनार, केवड़े आदि के सघन वृक्ष हैं। इन वृक्षों के साये में एक अत्यन्त मर्मस्पर्शी करूण कथा हुई जो आज से हजारों वर्ष पूर्व घटित हुई थी। सं. 1016 की बात है- जयपुर राज्य में मीरा गांव के नाई परिवार में विजयराम की पुत्री कर्मेती का विवाह राजोरगढ़ निवासी कर्मसी नाम के व्यक्ति के साथ हुआ था।

कर्मेती जब अपने पति के साथ श्वसुर-गृह जा रही थी तो उसके प्रति को इसी स्थान पर सर्प नें डस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। कर्मेती वहां के ग्वालों की सहायता से अपने पति के साथ-साथ सती हो गयी। यही देवी महान् समय के साथ-साथ नारायणी-मता के रूप में कही जाने लगी और यही देवी भक्त जनों के लिए श्रद्धा की महान् देवी बन गई। मन्दिर के सामने जो संगमरमर का कुण्ड हैं उसमें तीन चार फुट पानी रहता है। इसका जल शीशे की तरह ध्वल है। यह जल नारायणी-माता का प्रसाद है, जो अपने आप अन्तः स्त्रोतो सके निकलता रहात है और साफ होता रहता है। लोग यहं वर्षा ऋतु में सैर-सपाटे के लिए आते हैं और वर-भोज का आनन्द उठाते हैं।

भानगढ़

भानगढ़ प्राकृतिक-सौन्दर्य के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष रूप से प्रसिद्ध है। भानगढ़ के अतीत काल के खण्डहर आज भी पुकार-पुकार कर अपनी गाथा कहते हैं। भानगढ़ में कौन-कौन शासक हुए, किन-किन ने आक्रमण किया, आज भी यहाँ के पत्थर अपनी मौन गाथा सुनाते हैं। किसी समय में यह बहुत अधिक सुन्दर नगरी रही थी। बहुत पुरानी भी नहीं। इतिहास प्रसिद्ध महाराजा मानसिंह के छोटे भ्राता महाराज माधोसिंहजी की यह राजधानी थी। इस नगर को सं. 1631 में महाराजा भगवानदास ने इस स्थान की प्राकृतिक शोभा से मुग्ध होकर बसाया था। उस समय इसमें करीब दस हजार घरों की ही नगरी थी। जो करीब 150 वर्षों तक आबाद रही। समय के साथ इसकी वैभवता क्षीण होने लगी। इस बस का कारण वहां का अकुशल शासन था। माधोसिंह के वंशधर धीरे-धीरेजागीरदारों के रूप में बंटने लगे। नेतृत्व कमजोर होता चला गया। इन जागीरदारों की एक शाखा ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। यह समय औरंगजेब का था। इन्हीं जागीरदारों की एक शाखा ने शाही फौज की मदद से भानगढ़ पर कब्जा कर लिया।

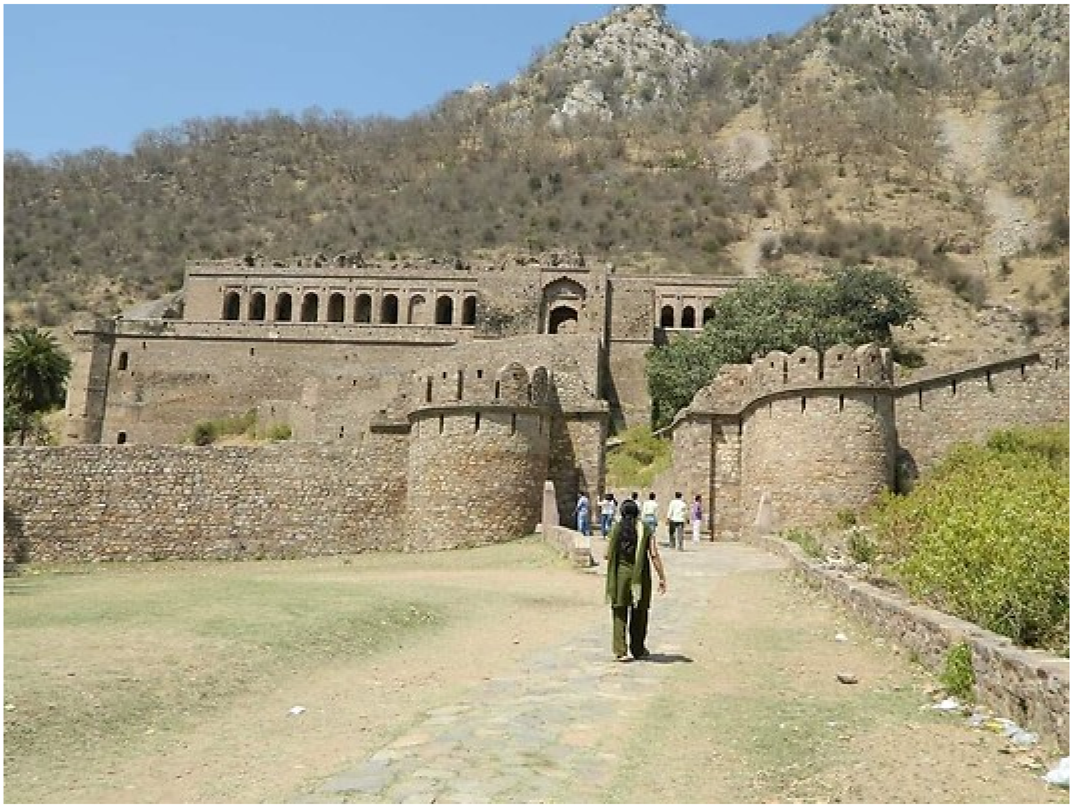

भानगढ़ किले का सामने का दृश्य

भानगढ़ में सोमेश्वर महादेव मंदिर

सं 1720 में सवाई राज जयसिंह ने इस राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। कुछ लोग इस नगर के उजड़ने का कारण अकाल भी बतलाते हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि सं0 1874 में यह नगरी पूर्ण-रूपेण खंडहर थी। आज भी भानगढ़ के टूटे-फूट खंडहर, इमारतें, फव्वारें, उस समय की कुशल वास्तु कला का परिचय देते हैं। राजा भगवादास ने एक स्वप्न देखा था जो समय के थपेड़ों से जर्जरित हो गया।

भानगढ़ किले के खंडहर का एक दृश्य

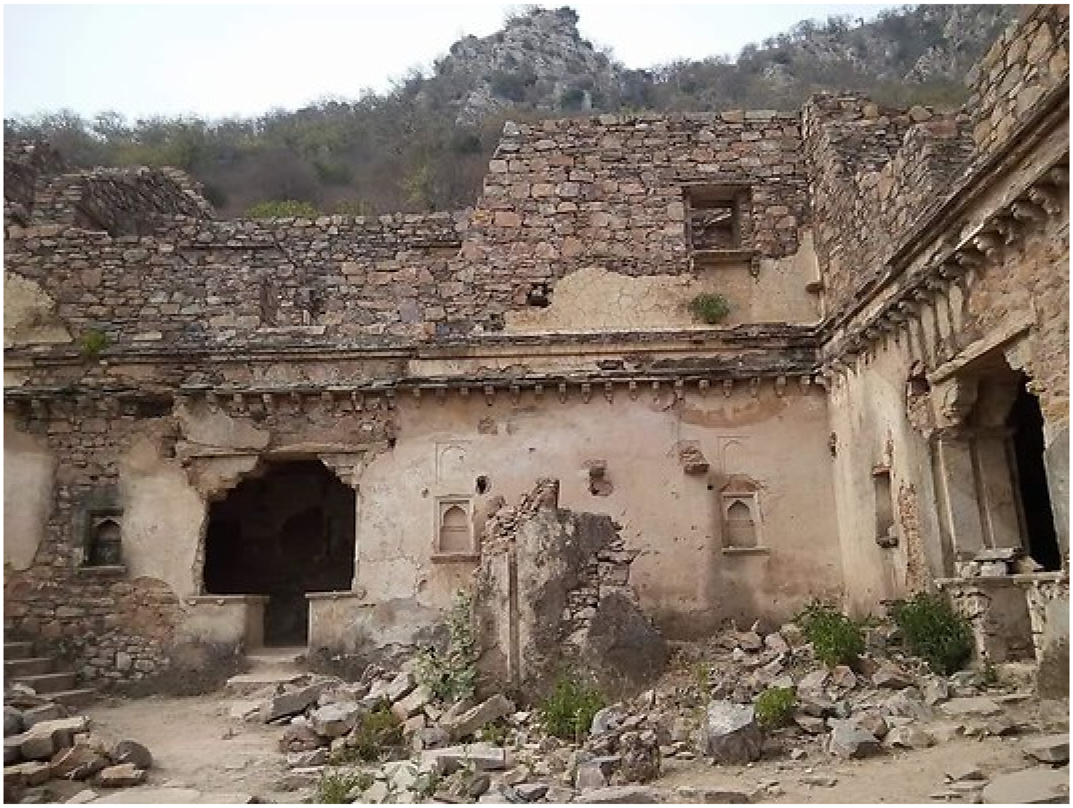

भानगढ़ किले में खंडहर के अंदर का दृश्य

किले से देखने पर भानगढ़ शहर का खंडहर ।

वर्तमान में भानगढ़ के बारे में रानी रत्नावती द्वारा तांत्रिक को प्रेम निवेदन अस्वीकार करने के कारण श्राप से जोड़ते हैं । कुछ टेलीविजन समाचार चैनलों ने इस के बारे में भारी भ्रांतियाँ फेला कर इसे विश्व का सर्वाधिक भूतहा धरोहर के रूप में प्रचारित किया हुआ है । कुछ भी आज भानगढ़ को देखने के लिए हजारों पर्यटक हर दिन यहाँ भ्रमण करने आ रहे हैं ।

भानगढ़ किले के पास एक गुंबद

नलदेश्वर

अलवर और थानागाजी के बीच पहाड़ियों में एक अत्यधिक सुरम्य स्थान नलदेश्वर के नाम से विख्याता है। बारा से बाहर निकलते ही जयपुर हवामहल के समान पहाड़ियाँ सीधी दीवार की भांति खड़ी दिखाई देती हैं। सड़क के बाई ओर पहाड़ी घाटी में अन्दर तक जाने वाला बीहड़ मार्ग नलदेश्वर को ले जाता है।

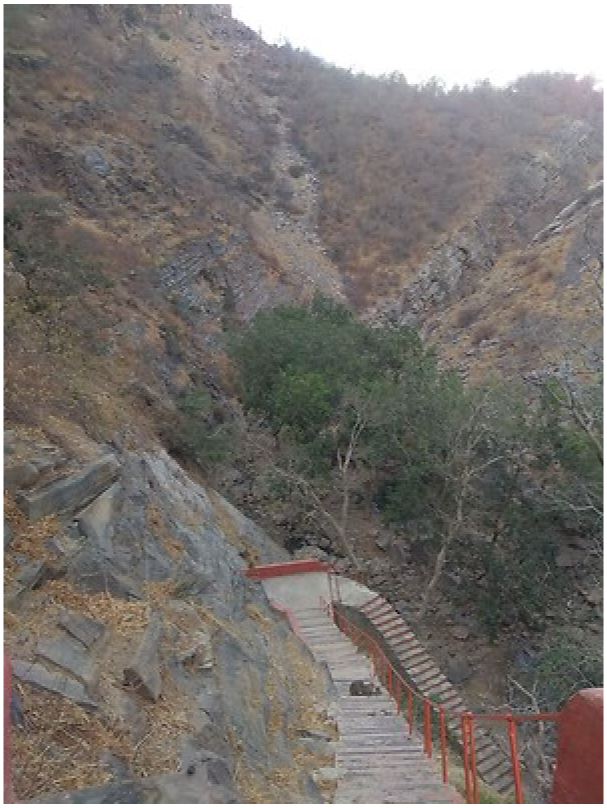

नालदेश्वर का रास्ता

नलदेश्वर में महादेवजी का मन्दिर है, जो नैसर्गिक पहाड़ी चट्टान से बना हुआ है। सैकड़ों सीढ़ियाँ चढ़ने के उपरान्त ही वहां तक पहुंचा जा सकता है। उन मन्दिरनुमा चट्टान से पानी टपकता रहता है मानो प्रकृति का कण-कण महादेव को जल चढ़ा रहा हो। बीहड़ जंगल पहाड़ी नाला और नैसर्गिक कुण्ड यहां की शोभा हैं। इस स्थान पर वही पहुँच सकता है जो 4-5 मील पहाड़ में पैदल जा सकें।

अलवर-जयपुर मार्ग पर भगवान शिव मंदिर गुफा, नालदेश्वर का आंतरिक दृश्य

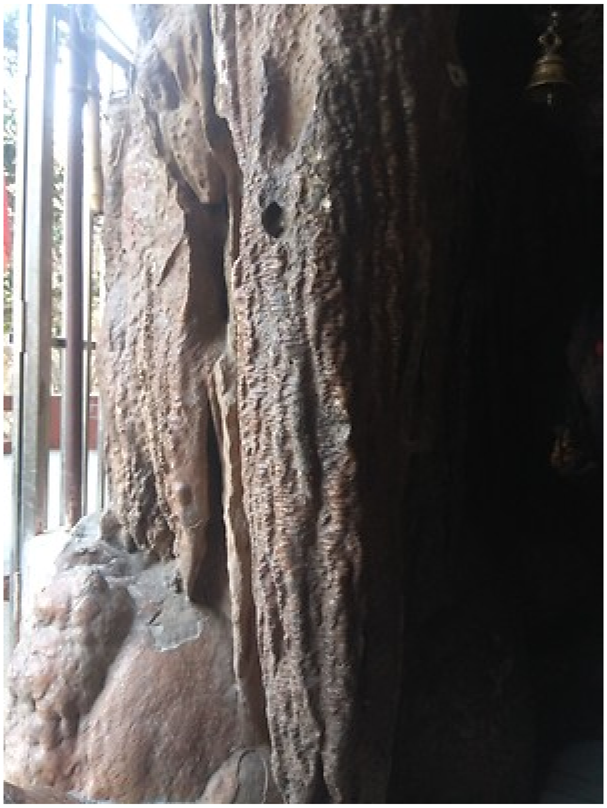

पहाड़ी, भगवान शिव मंदिर गुफा, नल्देश्वर का प्रवेश द्वार, हाथी की तरह दिखता है

नालदेश्वर शिव मंदिर के आसपास की पहाड़ियों का एक दृश्य

जयसमन्द बांध

अलवर से केवल 4-5 मील की दूरी पर स्थित जयसमन्द बांध सैलानियों के लिए एक सुन्दर एवं आकर्षक केन्द्र हैं। महाराजा जयसिंहजी के द्वारा निर्माणित यह बांध सिंचाई की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही साथ ही विस्तृत जल के फैलाव के तथा सुन्दर छतरियों के कारण भी महत्त्वपूर्ण बन गया है। महाराजा जयसिंहजी ने इसे बड़े प्रेम से बनवाया था तथा वे चाहते थे कि अलवर जनता के लिए सुन्दर एवं आकर्षक विहार-स्थल बन जावें। उन्होंने एक बार यहाँ बहुत बड़ा मेला बनवाया था जिसमें भारतवर्ष की प्रसिद्ध दूकानें लगी थी।

मील भर लम्बी पाल और पाल की कतार बांधे छतरियाँ तथा दूर-दूर तक फैला हुआ जल जयसमन्द की सुन्दरता में चार चाँद लगा देता है। सैलानियों के लिए सरकार इस स्थान को विकसित कर अन्य सुविधाएँ जुटादे तो यह अलवर के समीप सुन्दर विहार-स्थल हो सकता है।

इनके अलावा हम नलदेश्वर, जयसमन्द, विजयमन्दिर, गर्वाजी, पाराशर, नीलकंठ को भी कैसे भुलावें। ऐसा लगता है मानो प्रकृति माँ ने अपना सारा सौन्दर्य का प्रसाद अलवर को ही बांट दिया हो। इन स्थानों को देखकर हमारीबुद्धि चकरा जाती है और यह सोचान लगते हैं कि यह स्थान राजस्थान का रेगिस्तान है या प्राकृतिक स्थान? इसका निर्णय आप स्वयं करें।

इतिहास के दर्द को कोई नहीं देख पाया। वर्तमान में आदमी उलझा रहता है, भविष्य की कल्पना में मग्न रहता है और अतीत की गाथा को दोहराया रहता है, पर वह अतीत गाथा कितनी सच्ची होती है तथा कितनी काल्पनिक होती है इस स्वयं इतिहास भी बताने में सर्वदा असमर्थ रहा है। राजाओं का, युद्धों का, कलाओं एवं राजनैतिक उथल-पुथल का दर्द भले ही इतिहास में छिपा पड़ा हो, पर सामान्य जनता का दर्द इतिहास भी अंकित नहीं कर पाया है। असली इतिहास उस भीड़ का ही होना चाहिए जिसका खून-पसीना राज्यों का निर्माण करता है।

अलवर के किले की कहानी, शहरों की कहानी एवं पत्थरों, दीवारों और कागजों पर अंकित कलाओं की कहानी के कण-कण में सामान्य जनता के खून-पसीने की छाप है, पर इतिहास उस सबको कहने में असमर्थ है। वह मौन साधे बैठा है। एक दिन ऐसा अवश्य

होगा जब इतिहास का वास्तविक दर्द स्त्रोत बन कर फूट निकलेगा और उस दर्द में सारा शहर सराबोर हो उठेगा। उस दिन की हमें भी इन्तजार है।

अलवर के ऐतिहासिक संत एवं कवि

लालदास

अलवर के प्राचीन संतों में सर्व प्रथम लालदास का नाम आता है। इनकी गणना मेवात के महान् संत और सर्वोपरि सुधारक के रूप में की जाती है। इनका जन्म सं. 1597 में अलवर से 6 किलोमीटर दूर विजयमन्दिर रोड पर स्थित धोलीदूब नाम के एक छोटे से गांव में हुआ था। ये संत दादू और महाकवि जायसी के समकालीन हुए।इनका जन्म मेव जातति में हुआ था। इनके पिता का नाम चांदमल और माता का नाम समदा था। तत्कालीन मेवों का रहन-सहन हिन्दू-धर्म के अनुसार ही होता था। इन्होंने सदा लकड़ी बेचकर अपना निर्वाह किया। इनके बहुत से चमत्कारों की कथाएँ जनश्रुति के आधार पर मिलती है। इनका देहान्त सं. 1705 (भरतपुर राज्य) ग्राम में हुआ ओर शेरपुर में इन्हें समाधि दी गई। इनकी स्मृति में अलवर से करीब 6 किलोमीटर दूर बहरोड़ पर एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया गया है। जहाँ मेले भरते है तथा लालदास का रोट’ बनाया जाता है। मेजर पी. डब्ल्यू. पाउलट ने अपने ’अलवर गजेटियर’ में इनके विषय में बहुत विस्तार से लिखा है।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इनके अनुयायी है। इस मत का नाम ’लालदासी’ सम्प्रदाय है जो कबीर पंथ से मिलता है। ये साधु और गृहस्थी दोनों होते हैं। प्रत्येक लालदासी जी भिक्षा मांगना हेय समझता है। यह अपने परिश्रम में आजीविका पैदा करता है। राम नाम ही उसका जप है। आगरा, भरतपुर तथा अलवर में इनके बहुत अनुयायी है। इनकी वाणी का संग्रह ’लालदास की चेतावणी’ के नाम से जयपुर के हरिनारायण पुरोहित द्वारा हुआ है। इनका ’मखदूम साहब’ लालदासियों के लिए वेद सदृष है। कविता का प्रतिपाद्य विषय हिन्दू मुस्लिम एकता, अन्य निुर्गण संतों की भांति मन की एकाग्रत, गुरू का महत्त्व, नम्रता, पवित्रता आदि है। भाषा की दृष्टि से वह लोक भाषा और मिश्रित भाषा कही जा सकती है, जिसमें ूर्द, ब्रज भाषा आदि सम्मिलित हैं।

श्री श्री 108 श्री
2019-3-13 13:16

अलवर-बहरोड़ मार्ग पर संत लाल दास मंदिर का अवलोकन

श्री श्री १०८ श्री बाबा लालद्वासजी महाराज
2019-3-13 12:42

संत लाल दास मंदिर के अंदर का दृश्य

चरणदास

अलवर के संत कवियों में चरणदास का नाम भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के संत साहित्य में चरणदासजी के योगदान की प्रषंसा सभी विद्वानों ने मुक्त-कंठ से की है। इनका जन्म अलवर नगर के पास विजय राजप्रसाद के निकट स्थित डेहरा ग्राम में सन् 1703 में हुआ। इनकी माता का नाम कुंजो देवी और पिता का नाम मुरलीधर था। इनके के बचपन का नाम रणजीत था और 19 वर्ष की आयु में गुरू शुकदेव से दीक्षा लेने पर नाम इनका बदल कर चरणदास कर दिया गया। बाल्यकाल से ही एकान्त-प्रियता एवं हरि-भक्त की प्रौढ़ भावना के दर्षन होने लगे। अपनी माता के साथ ये दिल्ली गए और फिर भगवत्-दर्षन की आकांक्षा से बृजक्षेत्र की यात्रा की। दिल्ली का बादषाह मुहम्मदषाह इनके दर्षनार्थ आता था। 80 वर्ष की आयु में सन् 1783 में इन्होंने समाधि ली। इनकी प्रमुख गद्दी आज भी दिल्ली में स्थापित है।

अलवर के देहरा गाँव में चरण दास मंदिर

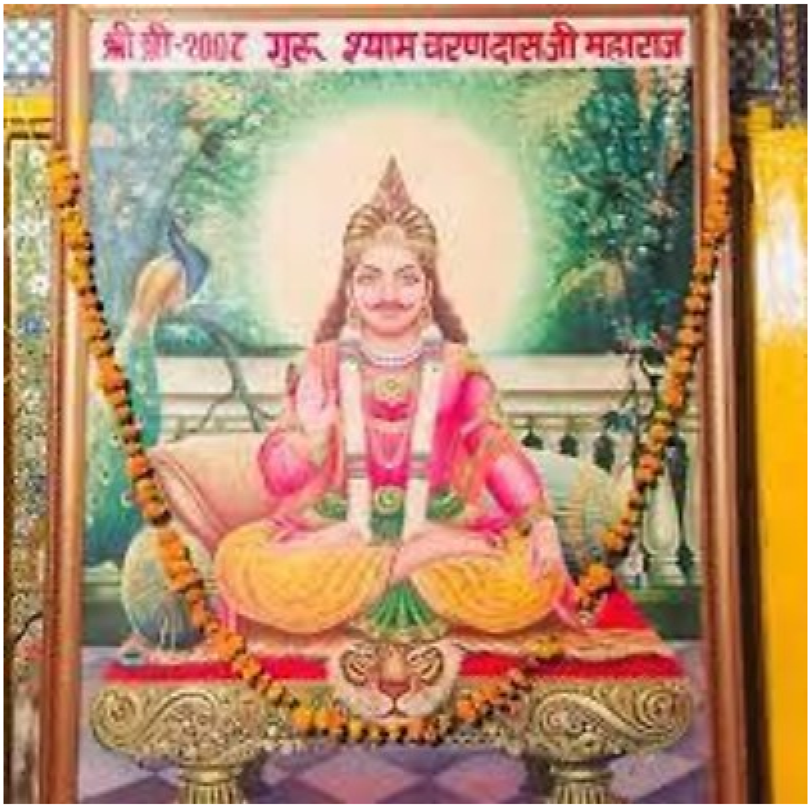
श्री श्री-१००८ गुरू श्याम चरणदासजी महाराज

चरण दास मंदिर की एक और तस्वीर

इन्होनें जहाँ भी कृष्ण चरित्र का वर्णन किया है, वहां वह योग-दर्षन के सिद्धान्तों से दूर नहीं है। निर्गुण सन्तों की तरह मुद्रा, अष्टकमल, निरंजन, साहब, हठयोग, सद्गुण आदि का वर्णन बड़े सरल और प्रभावषाली ढंग से किया है। इसलिए दार्षनिक दृष्टि से चरणदास निर्गुणी कहे जाते हैं, परन्तु काव्य की दृष्टि से सगुणी भी कहे जा सकते हैं। उनका अधिक झुकाव सगुण की ओर (जिसमें आडम्बर की मात्रा न हो) दिखाई देता हैं इनके ग्रन्थों में शान्त, श्रृंगार, हास्य, करूण, अदभुत वीभत्स रसों की रचनाएँ मिलती है। अधिकतर ग्रन्थों की रचना, षिष्य एवं गुरू के प्रष्नोत्तर शैली में हुई है। छंद की दृष्टि से दोहा, चौपाई, अष्टपदी और कुण्डलियाँ छन्द इन्हें प्रिय थे ।

ठनकी भाषा में साहित्यिक अवधी तथा ग्रामीण अवधी के रूपों का सुन्दर समन्वय मिलता है। अरबी, फारसी, संस्कृत, ब्रज, भौजपुरी एवं बुन्देलखंडी के शब्द पर्याप्त मात्रा में पाए जाते है।

सहजोबाई और दयाबाई

संत चरणदास के मुख्य षिष्यों की संख्या 52 है। इन षिष्यों में से सबसे अधिक विख्यात् उनकी दो षिष्याएँ हुई हैं, जिनमें एक का नाम सहजोबाई था और दूसरी का दयाबाई। यह जोड़ी संतों में बेजोड़ हुई है तथा स्त्री कवियों में इनका ऊँचा स्थान है। इन दोनों ही गुरू बहनों का जन्म-स्थान डेहरा ग्राम बतलाया जाता है और कहा जाता है कि ये दोनों अपने गुरू की सजातीय थी तथा उनके साथ दिल्ली जाकर रही। इनमें से सहजोबाई का जीवन काल सन् 1683 ई0-1763 ई0 बतलाया जाता है। इनके जीवन की अन्य घटनायें उपलब्ध नहीं होती हैं, केवल इतना पता लगता है कि इनके पिता का नाम हरिप्रसाद था। जीवन भर ये अविवाहित रहीं। इनका ग्रंथ ’सहज प्रकाष- मिलता है, जिसकी समाप्ति फाल्गुन सुदी बुधवार 1743 ई. को हुई। दयाबाई के लिए भी कहा जाता है कि इन्होंने सन् 1693 से लेकर 1718 तक सत्संग किया और उसके अनन्तर एकान्त सेवन करने लगी थी। ’संतमाल’ के अनुसार इनकी मृत्यु सन् 1773 ई. मे हुई।

दयाबाई ने चैत्र सुदी 7 सं0 1818 (सन् 1761 ई0) को अपना ’दयाबोध’ ग्रन्थ लिखा था। इन रचनाओं के अतिरिक्त सहजोबाई की दो अन्य रचनाएं क्रमषः ’षब्द’ एवं ’ सोलह तत्त्व निर्णय’ के नाम से प्रसिद्ध हैं और दयाबाई की एक ’विनयमालिका’ भी बतलायी जाती है। संत कवियों की तरह गुरू-महिमा, सिद्धान्त, मन-समझाव योग का वर्णन आदि विषय ही वर्ण विषय हैं। भाषा पर चरणदास का पूरा प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सहजों में प्रेम की प्रधानता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और दयाबाई में वैरागय की। दोनों की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं -

धन छोटा पन सुख महा, धिरग बड़ाई ख्वार;
स्हजो नन्हा हूजिये, गुरू के वचन सम्हार।
स्हजो तेरे सब सुखी, गहें चन्द और सूर।,
साधू चाहै दीनता; चहैं बड़ाई कूर।
अभिमानी नाहर बड़ों, भरमत फिरै उजाड़,
सहजो नन्हीं बाकरी, प्यार करै संसार।
सहजोबाई।
प्रेम पंथ है झटपटो, कोई न जानत पीर।
कै मन जानत आपनों, कै लागै जेहि पीर।।

दया कुँवरि या जगत में, नहीं आपनों काये।
स्वारथ बंदी जीव है, राम नाम चित जोय।।
बौरी हैृ चितवन फिरूँ, हरि आवै किही ओर।
छिन ऊँठू छिन गिर पड़ूँ, राम दुखी कन मोर।।
दयाबाई।

करमाबाई

अलवर की भक्त कवियित्रियों में सहजोबाई और दयाबाई के नाम के पश्चात् करमाबाई का नाम आता है। ये मुगल बादषाह जहांगीर के समय में नारायणपुर परगने की गढ़ी मामोड़ में रहती थी, तथा आज भी उसी ग्राम में अरावली पर्वत की तलहटी में इनकी समाधि है। ये जाति से जाट थीं। इनकी मृत्यु सन् 1667 ई0 में हुई। इनकी साहित्यिक कृति तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु इनके कवि होने की प्रसिद्धि अवष्य है। कहते हैं स्वयं भगवान् ने इनकी खिचड़ी खाई थी। श्री जगदीषपुरी में आज तक भगवान् के प्रसाद के रूप में करमाबाई का खीचड़ा बटता है। 'भक्त माल' में भी करमाबाई का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है।

हुती एक बाई ताको 'करमा' सुनाम जानि,
बिना रीति भांति भोग खिचड़ी लगावही।
जगन्नाथ देव आप भोजन करत नीके,
जिते लगे भोग तामें यह अति भाव ही।
गयो ताँह साधु, मानि बड़ी अपराध करै,
भरै बहूँ सांस सदाचार लै सिखावही।
भई यों श्रवार देखे, खोलि कै किवार,
जे पै जूठनि लगी हैं, मुख धोए बिनु आवही।

अलीबख्श

अलवर के भक्त कवियों में राव अलीबख्श का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। ये मुंडावर के जागीरदार और रांगड़ मुसलमान जाति के थे। अलवर नरेष ने इनका परिचय ’प्रिस’ अलीबख्श ऑफ मुंडावर’ कहकर दिया था। ये उर्दू और हिन्दी दोनों भाषा में कविता किया करते थे। ये कृष्ण -भक्ति की ओर अधिक आकर्षित थे। उन्होंने अधिकतर लीला-पद ही लिखे हैं। इनके पदों का एक संग्रह ’कृष्णलीला’ वर्तमान अलवर नरेष के पास भी रहा है। सगुण भक्ति की आरे आकर्षण तथा कृष्ण लीला-पद गान करने के कारण ये अलवर के ’रसखान’ कहलाते हैं।

अलीबख्श की विधिवत् षिक्षा के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं होता। प्रचलित धारणा के अनुसार उन्होंने किसी भी पाठषाला में विधिवत् षिक्षा प्राप्त नहीं की थी।

साधु-समाज उन्हें अत्यन्त अलीबख्श प्रिय था, जिसके कारण उन्होंने लोक-लाज को भी परवाह नहीं की। हिन्दू और मुसलमान में विभेद नहीं करते थे । दोनों की धर्मो के समान मानते थे। हिन्दू-धर्म के तौर तरीकों में विष्वास के कारण मुसलमानों द्वारा उनको अनेक प्रकार की धमकियां भी दी गई जिनका उन पर कोई असर नही पड़ा। अलीबख्श का ख्याल आज भी प्रचलित है। अलवर जिले के मुडावर में उनकी मज़ार स्थित है और उनका स्मारक बनाया गया है। जहाँ साल में दो बार सांस्कृतिक एवं संगीत कार्यक्रम आयोजित कर उन्हें श्रद्धांजलि दी जाती है।

कृष्ण भक्त अलीबख्श पैनोरमा, मुण्डावर
राजस्थान धरोहर संरक्षण एवं प्रोन्नति प्राधिकरण
पैनोरमा

अलवर जिले के मुण्डावर कस्बे में हरसौली रोड पर विद्युत ग्रिड के पीछे अलीबक्श पैनोरमा

अलीबक्श पैनोरमा का प्रवेश द्वार

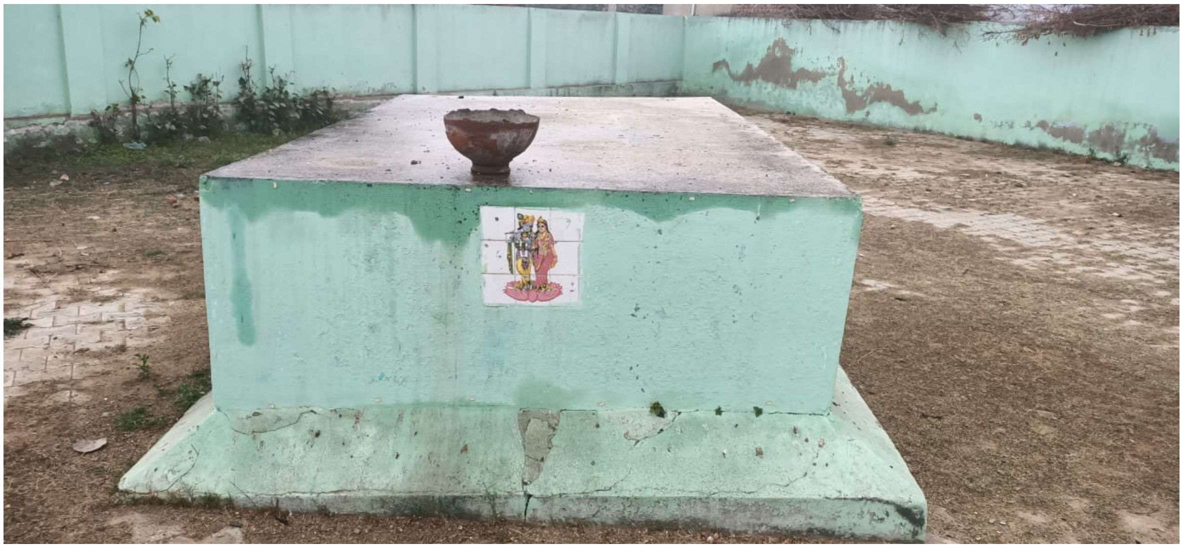

अली बक्स स्मारक पर भगवान कृष्ण और राधा की मूर्ति स्थापित है।

कृष्ण भक्त अ
, मुण्डावर

पैनोरमा में हारमोनियम बजाते हुए अली बक्श की मूर्ति

मुंडावर तहसील में रामबास पीपली गाँव की मिस बीना मीना अब अली बक्श की ख़याल गा रही हैं।

पहल गांव के हजारी लाल अब अली बख्श के ख़याल गा रहे हैं।

रणजीत सिंह बेनामी

अलवर के सन्त कवियों में श्री रणजीसिंह जी बेनामी का नाम बड़े आदर पूर्वक लिया जाता है। मूलतः आप कोसी के निवासी थे। जाति से जाट थे। बाल्यावस्था से ही ईष्वर भक्ति की ओर अनुराग स्पष्ट हो गया था। स्वामी कक्करजी के ग्राम में पधारने पर उनसे दीक्षित हो गए। गुरू से अपना नया नाम पूछने पर भी स्वामीजी ने कहा ’तेरा नाम क्या है? तू तो बेनाम है।’ तब से बेनामीजी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। पर्यटन करते हुए सन् 1849 में अलवर आये और शुक्लजी की बगीची में रहने लगे। कुछ मास पश्चात् भूरासिद्ध के बारे में पाल पर निवास किया। आपके जीवन-सम्बन्धी कुछ चमत्कारिक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं।

अलवर के महाराज श्री षिवदानसिंह जी ने भी एक बार परीक्षा लेनी चाही, परन्तुमहाराजा को स्वयं ही झुकना पड़ा। इनका सम्प्रदाय ’बेनामी’ सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी षिष्य परम्परा में श्री किषोरीदासजी तथा श्री गरीबदासजी के नाम बड़े आद से लिए जाते हैं।

’बेनामी का सम्पूर्ण साहित्य’ आत्म-बोध से प्रकाषित हुआ हैं। अन्य सन्त कवियों के वर्ण विषय की भांति इनका भी गुरू की महिमा, राम नाम का महत्त्व, आरती तथा अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। ’बेनामी-गीता’ ने सबसे अधिक प्रसिद्धि पाई है। प्रयुक्त छन्दों में कवित्त, दोहा, चौपाई, आल्हा कुण्डलियाँ हैं। भाषा चलती हुई लोक भाषा है। हिन्दी, उर्दू, का सुन्दर सम्मिश्रण देख पड़ता है।

अलवर

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य